"हमारे अंदर अज्ञान से जमे हिमखंड को
तोड़ने के लिए पुस्तक एक कुठार है।" -काफ्का

समीक्षा,संवाद और सूचनाओं की

साहित्य नंदिनी

वर्ष–7, अंक–3, मार्च 2025 www.abhinavimroz.com RNI No. DELHIN/2017/74713/19-02-18

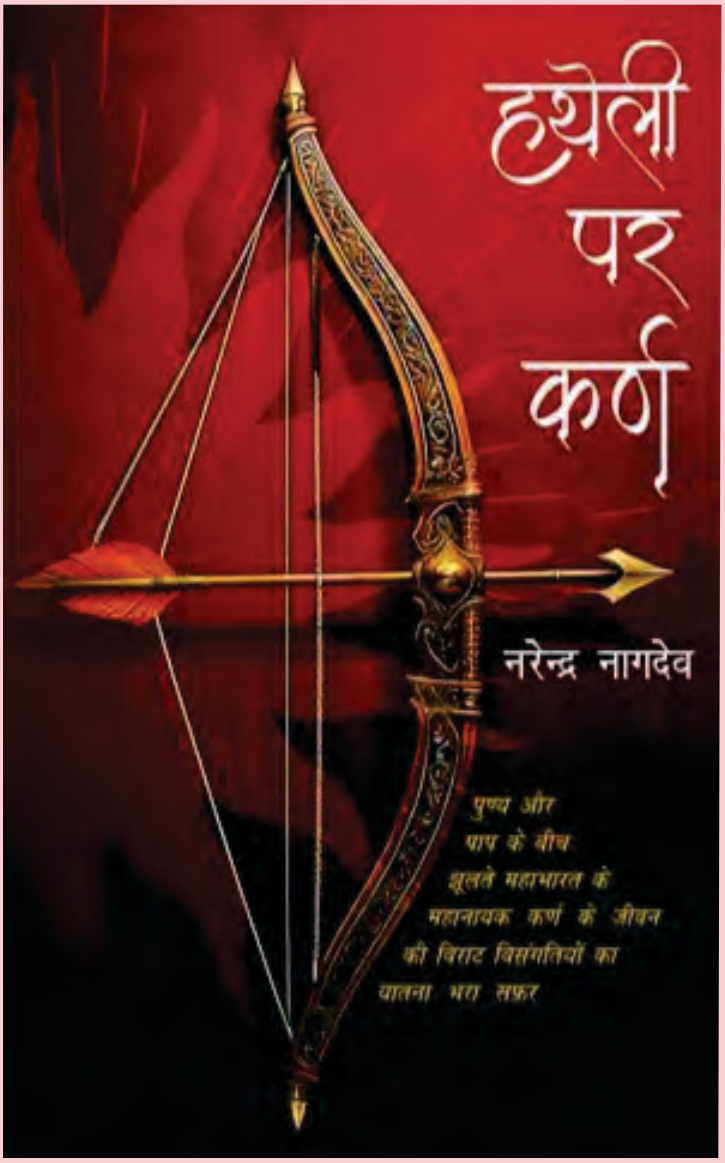

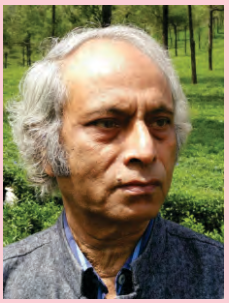

महाभारत के महानायक कर्ण का नाम आते ही आंखों के आगे परस्पर विरोधी बिम्ब उभर आते हैं– एक कर्ण दान-पुण्य के शिखर पर है, जो इंद्र को अपने कवच-कुंडल तक दान कर देता है, तो दूसरा कर्ण दुर्योधन के दरबार में चीरहरण के घृणित कृत्य में सहभागी है।

'हथेली पर कर्ण' वरिष्ठ कथाकार-उपन्यासकार नरेंद्र नागदेव द्वारा कर्ण के जीवन की ऐसी ही विराट विसंगतियों को खंगालता हुआ, अपनी सुपरिचित विशिष्ट शैली में लिखा गया उनका छठा उपन्यास है, जो पौराणिक नायकों के जीवन पर सृजित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करता है।

उपन्यास का नैरेटर कर्ण का बालसखा और शुभचिंतक है। उसके सूत पुत्र होने के अपमानों का गवाह भी,और विलक्षण धनुर्धर में विकसित होने का साक्षी भी। वह महज़ उसकी जीवनी को प्रस्तुत नहीं कर रहा, बल्कि बार-बार उसके उच्च आदर्शों से स्खलित होकर पतन के गर्त में गिरने की यातनाओं को स्वयं अपने अंतर्मन पर झेल रहा है।

नैरेटर व्यवसाय से वास्तुकार है तथा व्यावसायिक रूप से वारणाव्रत के लाक्ष्यागृह तथा हस्तिनापुर के द्यूतगृह जैसे तमाम भवनों के निर्माण से संबद्ध है, जहाँ महाभारत की निर्णायक घटनाएँ घटीं। वह स्वयंरचित इन स्थलों में घटित भयावह षडयंत्रों में कर्ण की अक्षम्य संलिप्तता से अत्यंत मर्माहत है।

कर्ण अपने जीवन में एक साथ पाप और पुण्य दोनों को बेधड़क जीता चलता है, जब तक कि उसकी मृत्युशैय्या पर स्वयं श्रीकृष्ण के सामने यह तय करने की ज़िम्मेदारी नहीं आ जाती कि दोनों में से किसका पलड़ा भारी रहा ?

नरेन्द्र नागदेव जी का साहित्यिक रचना संचार

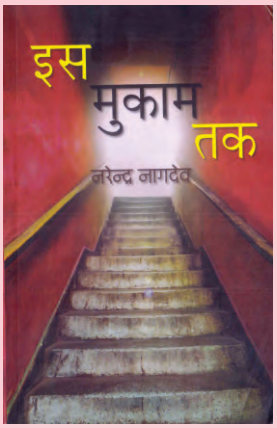

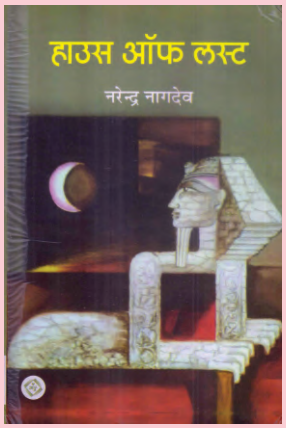

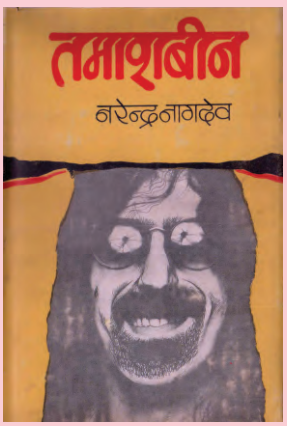

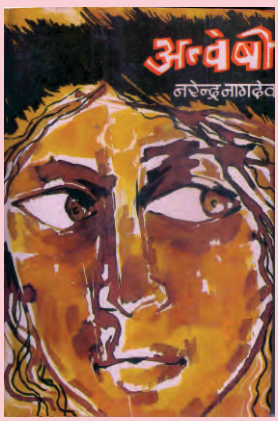

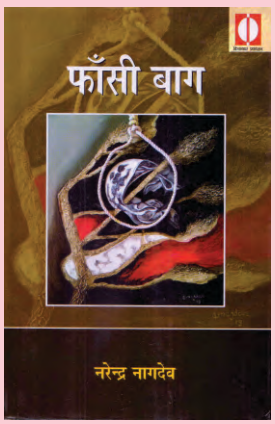

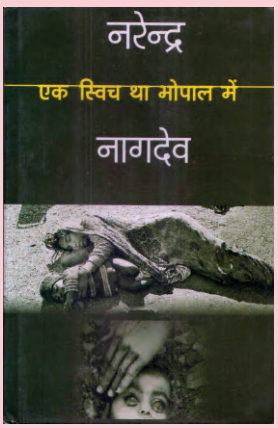

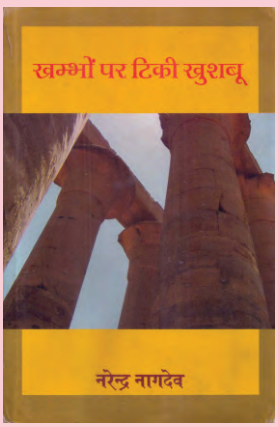

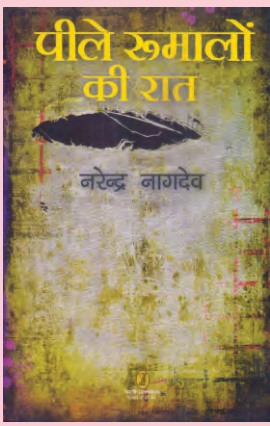

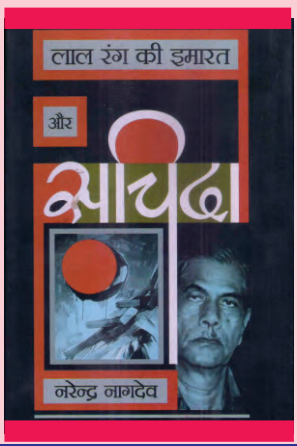

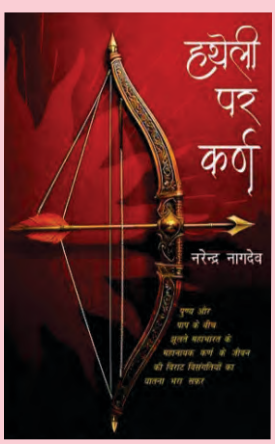

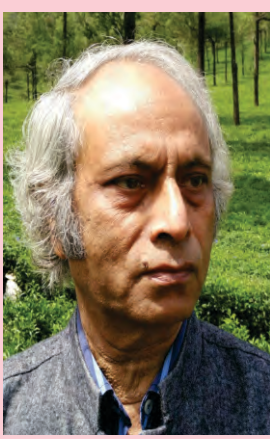

संपर्क : संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070
मो. 9910497972 ई-मेल : abhinavimroz@gmail.com

समीक्षा

किताबों का घर जहाँ परसाई जी रहते थे : ''काल के कपाल पर हस्ताक्षर''

मेरे इस किताब को पढ़ने और आत्मसात करने की भूमिका की शुरुआत सन् 1974 के दिसम्बर की ठिठुरती शाम में उसी समय बन गई, जब मेरा जन्म उसी शहर में हुआ जहाँ परसाई जी और राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जी रहते हैं। मेरे जन्म स्थान (डॉक्टर उर्मिला जामदार का अस्पताल जहाँ मेरा जन्म हुआ) से मात्र 300 मीटर की दूरी पर परसाई जी का निवास स्थान (सतना बिल्डिंग के बाद) है।

लेखक: श्री राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सुधा राय एवं एकता अमित व्यास (समीक्षक) के साथ

जैसे-जैसे उम्र अपनी बचपन की सीमाओं को पार कर बाहर निकल रही थी, वैसे-वैसे मेरा परिचय आहिस्ता-आहिस्ता किताबों से होने लगा । इसी दौरान विक्टोरिया अस्पताल के पास स्थित गांधी भवन पुस्तकालय और वाचनालय में जब किताबों से परिचय हुआ, तो अनायास ही मेरी मित्रता हो गई पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, दिनकर, शिवानी, मुक्तिबोध तथा हरिशंकर परसाई से। ये मित्रता कब दाँत काटी दोस्ती में बदल गई, पता ही नहीं चला। जैसे-जैसे ज़िंदगी की किताब ने समझ दी वैसे-वैसे पढ़ी गई किताबों की संख्या बढ़ती चली गई और उम्र के साथ बढ़ती ही चली जा रही है। ख़ैर, अब बात करते हैं उम्र के उस दौर की जिसे आधुनिक युग में हाफ सेंचुरी के नाम से जाना जाता है। लम्बे अरसे के बाद जब दोबारा पढ़ना-लिखना (लगभग 23 वर्ष) शुरू किया तो नज़रों ने, दिल ने, दिमाग़ ने, हाथों ने, मन ने और आत्मा ने जिन-जिन किताबों को पढ़ा व महसूस किया उसे मैंने आत्मसात कर जीवन जीने का मूल्य बना लिया।

अतिशयोक्ति न होगी अगर मैं कहूँ कि ऐसी कुछ किताबों में से एक किताब 'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' है, जिसके लेखक श्री राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जी हैं। यह किताब न सिर्फ़ लेखक हरिशंकर परसाई जी की जीवनी है; बल्कि एक जीवन शैली है, जीवन जीने की कला है और बालक 'हरी' की परसाई मास्साब से होते हुए लेखक, चिंतक, विचारक, पत्रकार, प्रेमी, पाठक और हरिशंकर परसाई जी बनने तक की यात्रा है । इस पूरी किताब में यह संदर्भ आता है कि परसाई जी बंद कमरों में बैठकर लिखने वाले लेखक नहीं, बल्कि वे फक्कड़ मिज़ाजी के ब्रांड एंबेसेडर और निर्भीकता से अपनी बात कहने वाले स्वाभिमानी व्यक्तित्व के मालिक थे।

इस उपन्यास परक जीवनी को पढ़ने के दौरान मैंने राय साहब के माध्यम से परसाई जी के अंदर बैठे परसाई का अनुसंधान किया। शुरुआती पत्रों पर ही सहित्य, कला और संस्कृति की राजनीति के साथ रिश्तों पर लिखी गई कालजयी रचना में लेखक को लीन होते देखा और इसके सम्मोहन के जाल में फँस गए शिक्षक-लेखक को देखा, जो विद्यार्थियों के लिए एक ख़ास रचना की व्याख्या करता है, तब उस दौरान उनके अंदर एक पाठशाला चलने लगती है। यह कहानी उनकी उँगली थामकर उन्हें कक्षा से बाहर ले जाती है और उनके मन के अंदर एक अलग ही पाठशाला शुरू हो जाती है। काल खंड का घंटा बजता है। दूसरी कक्षा में लेखक जाते हैं और दूसरी पाठशाला शुरू हो जाती है। यह दोहराव कई दिनों तक चलता रहा। इस दोहराव ने मुझे प्रेरित किया इस कालजयी रचना को पढ़ने के लिए। पुस्तक को बीच में ही छोड़कर मैंने पहले 'तीन सयाने' कहानी की खोज प्रारंभ कर दी और मेरी खोज समाप्त हुई गूगल देवी के चरणों में जाकर। यूट्यूब पर आयम मेहता की ज़ुबानी कहानी का पाठ सुना और पिछले दिनों एक पत्रिका में इस कहानी को पढ़ी। कहानी पढ़ने और सुनने के दौरान मेरे अंदर एक विमर्श का दौर शुरू हो गया और आँखें सपने देखने लगीं व दिमाग़ में प्रश्न उठने लगे कि क्या वाक़ई कभी धर्म और विज्ञान कारावास से बाहर

निकल पाएँगे? हमारे मन में भी कहानी पाठ पूरा हुआ। किंतु मन का विमर्श जारी रहा और अब तक जारी है।

एक जगह पुस्तक में राय साहब ने लिखा है कि "इसे लिखने की योग्यता हासिल करने में पचास साल का अरसा लगा और पुस्तक लिखने में तीन साल का।" मुझे लगता है यह पुस्तक न सिर्फ़ बालक हरी की हरिशंकर परसाई जी तक की यात्रा का संपूर्ण ग्रंथ है; बल्कि 1973-74 के राजेन्द्र को 'राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जी' बनाने की यात्रा का लेखा- जोखा भी है।

अगर हिन्दी साहित्य इसे अतिशयोक्ति न माने तो मेरी अर्ध शताब्दी में दोबारा शुरू हुई संक्षिप्त-सी लेखन यात्रा का नींव का पत्थर भी है।

"हरी के आगे संकर और जोड़ देत हैं, तो नाम भओ हरीसंकर।" "रचन वाला और मिटान वाला दोई साथ-साथ।" परसाई जी का जीवन भी यही था, एक तरफ़ सृष्टि उन्हें रचती थी, तो दूसरी तरफ़ सुख-सुविधाओं से वंचित भी करती चलती थी।

बालक हरी की तासीर बचपन में ही दिखने लगी थी। कम उम्र में ही मार्गदर्शक, त्राणदायक, गुरु-मित्रों की समस्या और सवालों को हल करने वाले बन्धु बन गए थे। बचपन से ही हरी ने अपने दोस्तों में अपना सब कुछ जीभरकर बाँटा। इस बाँटने के स्वभाव ने जीवन में मिलन सारिता, नेतृत्व क्षमता, सहभागिता, सहायता, जूझने का जज़्बा, लड़ने की हिम्मत, असंभव को संभव में बदलने का हौसला दिया। बचपन ने बचपन में ही हरी को लीडर बना दिया।

हरी ने मैट्रिक कर लिया। पर क्या उस समय के मैट्रिक ने हरिशंकर परसाई को पढ़ लिया था? हिन्दी साहित्य के महान लेखक जिसका बचपन से ही प्रिय विषय सहित्य रहा है, उसे सहित्य में ही प्रमाण पत्र नहीं मिला था; क्योंकि उत्तरों को जस का तस रटकर परीक्षा कॉपी में लिखना हरी के स्वभाव मे था ही नहीं। हरी के व्यक्तित्व में जो स्वेच्छाचारिता और व्यापकता थी, वह उन्हें किसी बँधन में बँधकर काम करने के लिए प्रेरित नहीं करती थी। बँधना उनके स्वभाव में नहीं था। बँधनों से मुठभेड़ थी, झगड़ा था। वे तन और मन दोनों से ही आज़ाद थे।

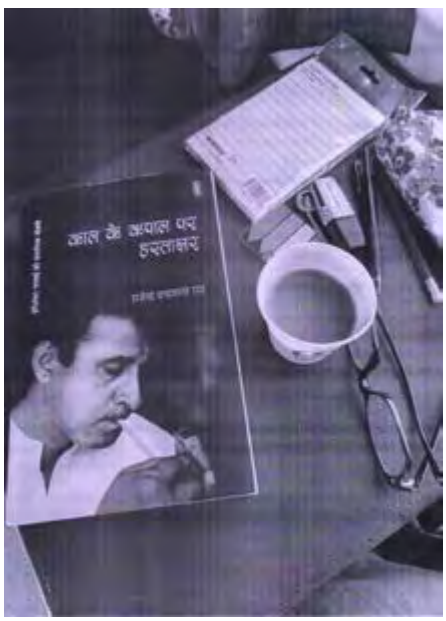

ये उनके व्यक्तित्व का ही कमाल था कि चौबीस घंटे से भी ज़्यादा भूखे रहकर, बिना टिकट नौकरी की तलाश में अँग्रेज़ों की चलाई हुई ट्रेन में पकड़े जाने पर उन्हीं की भाषा का प्रयोग कर ऐसे बच निकलते थे जैसे मक्खन में से गर्म छुरी। आख़िरकार इस जद्दोजहद के बीच नौकरी लगी गई और नौकरी लगते ही हरी को बाहर का सब नया- नया-सा लगा। सुबह की उजास नई, मकान की गलियाँ नई, पेड़-पौधे और फूल पत्तियाँ नई। चिड़ियों की चहकना नया, सूरज का गोला और उसकी सुनहरी आभा नई। ख़ुद अपना टहलना व चाल तक नई, अंदर भी नयापन फैला हुआ-सा। सुस्त हुआ पुराने को ज़रा पीछे को धकेलता हुआ-सा।

एक मध्यम वर्गीय मैट्रिक पास ज़िम्मेदार ज्येष्ठ पुत्र के लिए नौकरी कितनी ज़रूरी होती है और उसके लिए नौकरी लगते ही प्रकृति कितनी बदल जाती है। न सिर्फ़ प्रकृति बदलती है, बल्कि घर का वातावरण भी बदल जाता है। बहन-भाई उसे घर का कोई काम नहीं करने देते हैं। बीमार और मज़बूर पिता खाट पर लेटे-लेटे बरसों का बनवास काटकर आई खुशियों की ख़बर से उपजे भविष्य के संगीत को कौतुक से देख रहे हैं और रस ले रहे होते हैं। पर इस संसार की व्यवस्था भी बड़ी विचित्र है। यहाँ या तो लक्ष्मी मिलती है या सरस्वती। लक्ष्मी भी उतनी ही मिलती है, जितनी की ग़रीबी में गीला आटा...।

जिन दिनों हरी के पास पढ़ने लिखने का सुख न था, उन दिनों हरि ने बहुत कुछ पढ़ा और इस बहुत कुछ पढ़ने को लेखक ने ख़ूब समझाया है:

"पेड़ों और पहाड़ों को पढ़ना सीखा, बादलों और आसमान में इबारत खोजी, चिड़िया के क़िस्से सुने, जाम तारों से बतकही की, इन्हें पढ़ने के लिए अपनी भाषा के साथ ही, नई- नई वर्णमाला भी बनाई।

रेलवे स्टेशन पर बिन माँ का बच्चा पढ़ा। सूना। ख़ाली। हठहीन। रोने-मचलने के लिए तरसता हुआ, अपने-आप में सिमटा हुआ।

पेड़ों स्कूल को पढ़ा। पत्तों को विद्यार्थी। तोता और मैनाओं को अध्यापक पढ़ा। गिद्धों को हेडमास्टर / फूलों को दीवाली की छुट्टी पढ़ा। फलों को प्रगति पत्र।

पहाड़ों को मुसीबत पढ़ा। नदी को जुगत, मछलियों को उपलब्धि पढ़ा। रेत को असफलता। सीपियों को प्रयास पढ़ा। शंख को दोस्त।

बादलों को संगीत पढ़ा, बारिश का चैन। हवाओं को नृत्य बाँचा। बिजली को उम्मीद। अमावस को मृत्यु पढ़ा। पूनो को आनंद। चाँद को चाचा वाँचा। तारों को परिवार। चाँदनी को बुआ पढ़ा, जुगनू को भाई।

सूरज को पिता बाँचा। आसमान को लक्ष्य। धूप को मशक़्क़त पढ़ा। पसीने को कमाई। उजाले को गुरु पढ़ा। छाया को घर।

डोरी लाल को मनुष्य पढ़ा। हनुमान सिंह को ठट्ठा। स्टेशन मास्टर को घुग्घू बाँचा। डिपो साहब को लट्ठा। काँटा पढ़ा दोपहरी को। लू को पढ़ा चाँटा।" (पेज 130)

'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' परसाई जी पर सिर्फ़ एक पुस्तक नहीं है, बल्कि यह अपने समय का एक ऐतिहासिक ग्रंथ है। जंगल विभाग की नौकरी के दौरान ही परसाई जी ने डायरी लिखनी शुरू की। ये डायरी भी उस समय और परिस्थितियों का साक्षात्कार ही है।

बचपन से ही हरी शिक्षक बनना चाहते थे, ताकू की नौकरी में बहुत मन लगा, फिर बग्गा मास्साब का साथ मिला और वे हरी से परसाई मास्साब हो गए।

कम आए अधिक ख़र्चे, अशासकीय विद्यालय में अनियमित वेतन, और न जाने कितनी समस्याओं से जूझते हुए परसाई जी को उनके जीवन का सबसे प्रतिभाशाली छात्र मिला, जिसे दुनिया हिन्दी फ़िल्म संसार के जगमगाते सितारे के रूप में जानती है। इसी छात्र के माध्यम से परसाई जी ने जाना कि फ़िल्मी दुनिया यथार्थ का संसार नहीं है। उनका संसार तो संस्कारधानी में है।

वैसे भी परसाई जी के जीवन में जबलपुर बसा हुआ था, या जबलपुर में परसाई जी बसे हुए थे, ये खोज पाना बहुत मुश्किल है। कई बार तो ऐसे लगता है जैसे परसाई जी, जबलपुर और राजेन्द्र चन्द्रकान्त जी का रंग आपस में मिलकर एक नए रंग, नई ठसक को बना रहा है। वैसे तो परसाई जी अपनी व्यंग्य रचनाओं के लिए जाने जाते हैं, पर अपने शुरुआती दौर में उन्होंने सभी तरह की रचनाएँ की हैं। उनकी शुरुआत कहानी संग्रह से हुई थी, जिसका ज़िक्र उस पुस्तक में है। वैसे भी परसाई जी लेखकीय समाज पर अपनी छाप पहले ही छोड़ चुके थे। अब उनका व्यक्तित्व विस्तार पाकर धीरे-धीरे संस्कारधानी की राजनैतिक और सांस्कृतिक आत्माओं से मिलने लगा था।

कहीं-कहीं परसाई जी अछूत कन्या के नायक अशोक कुमार के जैसे प्रतीत होते हैं, जिनका मन प्रेम से लबालब भरा हुआ है, किंतु वे अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के आगे नतमस्तक हैं। इन उत्तरदायित्वों को निभाने में उन्होंने जीवनभर कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। प्रेम से भरा हुआ मन उनकी भाषा में भी दिखाई देता है। परसाई जी के व्यक्तित्व में जो पक्ष सबसे ज़्यादा उभरकर आया, वह है उनके परिवार के प्रति समर्पण और उत्तरदायित्व की भावना। पर परसाई जी क्या "परसाई" हो पाते बिना शकुन्तला जी के समर्पण के? शकुंतला जी संपूर्ण जीवन परसाई जी के इर्द-गिर्द ही रहीं, पर कभी उनके नज़दीक नहीं आईं।

परसाई जी आरंभ से ही शिक्षक बनना चाहते थे। अजीवन वह शिक्षक और छात्र बने रहे। वहीं दूसरी तरफ़ राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जी भी शिक्षक हैं। राय साहब ने परसाई जी के साथ काफ़ी वक़्त बिताया है। उन दोनों के जीवन की समरसता का परिणाम ही यह पुस्तक है।

इस पुस्तक में कहीं पर भी लेखक परसाई जी एकदम से आकर नहीं खड़े हो जाते हैं। धीमी आँच के अदहन पर पकते-पकते, बालक हरी से यात्रा प्रारंभ कर किसी आम इंसान से विशिष्ट इंसान की तरह लेखक हरिशंकर परसाई बन जाते हैं।

यों तो अपने जीवनकाल में परसाई जी बहुत ज़्यादा पढ़े गए। उनके लिखे गए कॉलम की पत्रिकाओं में महत्ता और उनका जीवनदर्शन पाठकों के लिए हमेशा ही एक प्रेरणा स्रोत रहेगा, जो इस पुस्तक में बहुत भली तरह से दर्शाया गया है। इस साल यानी 2024 में जितने कार्यक्रम, चिंतन, शोध और विमर्श परसाई पर हुए हैं, उतने शायद किसी अन्य लेखक पर अब तक नहीं हुए हैं। कहीं यह जन्मशती वर्ष का उत्साह बस न हो। आगे के वर्षों में भी पत्रिकाओं में परसाई जी पर विशेषांक निकलते रहें और उन पर शोध जारी रहे।

आजकल के लेखकों के लिए यह शोध का विषय हो सकता है कि एक लेखक इतने सारे पत्र-पत्रिकाओं में एक साथ कैसे अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकता है। वे न सिर्फ़ एक लेखक की तरह लिख रहे थे, बल्कि उस समय का लेखा-जोखा और अगर अतिशयोक्ति न हो तो आने वाली पीढ़ी के लिए इतिहास संजो रहे थे।

बीसवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दी सहित्य के एक नए युग की शुरुआत होती है, जिसे सहयोग कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। इस युग में समाज में फैली विसंगतियों व राजनितिक अव्यवस्थाओं को दर्शाने के लिए बहुत ही आक्रामक और आलोचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया, जिसे बाद में व्यंग्य कहा गया। इस आक्रामक शैली में लोकतंत्र के पाँचवे स्तंभ ने सरकार से सीधे-सीधे सवाल किए और गाहे-बगाहे इसका ख़म्याज़ा भी भुगता। पर इस आक्रमकता के पीछे हमेशा से रहा है एक संवेदनशील मन और ज़िम्मेदार नागरिक।

यह पुस्तक उस गुरु-शिष्य परम्परा की कहानी कहती है, जिसमें कनिष्ठ लेखक वरिष्ठ लेखकों से यों ही मिलते-जुलते रहते हैं। लम्बे समय तक इस मेल-जोल का परिणाम उभरकर एक मननशील लेखक के रूप में आता है। वैसे भी परसाई जी को दो तरफ़ से गुरुकुल का ज्ञान प्राप्त हुआ। एक तरफ़ बचपन में उनके पिता ने कई-कई बार रामचरितमानस का पाठ कराकर लगभग उन्हें कंठस्थ ही करा दिया, रामायण के पात्रों को उनके दिल में स्थायी घर दिलवा दिया, हरफ़नमौला दादा श्यामलाल, हर अभाव और दुःख को "चिंता नहीं" जैसे वाक्य के सामने घुटने टिकवा देने वाली बटेश्वर बुआ। तो वहीं दूसरी तरफ़ भवानी प्रसाद मिश्र, रामेश्वर गुरु और न जाने कितने अन्य लेखक और पत्रकार। ये सभी नाम इस पुस्तक के ऐसे चरित्र हैं, जिन्होंने ख़ुद परसाई जी को जीने के ऐसे-ऐसे गुर सिखाए कि वह ज़िंदगी में आई मुसीबतों की आँख में आँख समावेश अपनी नज़र डालकर उन्हें ललकारने लगे। अजीवन परसाई जी इन लेखकों और विचारकों के प्रति कृतज्ञ रहे, जो उनके लेखन में भी झलकता है।

जीवनी लेखन में सबसे बड़ा ख़तरा इस बात का बना रहता है कि किसी व्यक्तित्व की जीवनी लिखते वक़्त कोई नीरस-सा प्रवचन न सुना दिया जाए। कई बार तो जीवनी के नायक के जीवन के बहुत सारे महत्वपूर्ण पहलू अनजाने में कहीं नज़रअंदाज़ हो जाते हैं और कहीं-कहीं सिर्फ़ प्रणय प्रसंगों की चर्चा से पूरी जीवनी भरी रह जाती है।

कल्पना प्रधान कविता और कहानी लिखना किसी भी लेखक के लिए बहुत ही आसान है। किंतु किसी जीते-जागते सामाजिक व्यक्तित्व पर अपनी लेखनी चलाना किसी दुधारी तलवार पर चलने जैसा है। यह प्रतिष्ठित व्यक्तित्व इस समाज का हिस्सा होता है, उनकी अनेकों अनेक स्मृतियाँ, क़िस्से, कहानियाँ समाज में चारों ओर ओस की बूँदों की तरह बिखरी रहती है; इसलिए आप अपनी कल्पना की उड़ान से इस व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज़्यादा-कम नहीं लिख सकते।

मेरी दृष्टि में लेखक राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जी अपने इस अनुसंधान में पूरी तरह से सफल रहे हैं। यह बड़ी सहजता से सिर्फ़ और सिर्फ़ परसाई जी पर ही अपनी नज़रें केंद्रित कर लिखते रहे। वे उस परसाई का अनुसंधान करते रहे जो एक तरफ़ लेखक के रूप में समाज में व्याप्त विद्रूपताओं के ख़िलाफ़ जनजागरण का काम कर रहा है, तो दूसरी तरफ़ अपने साथी अध्यापकों के लिए भी लड़ रहा है। साथ ही पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ और मित्रता के तराजू पर भी बराबर बैलेंस बनाए हुए हैं।

परसाई जी जैसे व्यक्तित्व और लेखक को याद करना, पुनःस्मरण करना सहित्य समाज का कर्तव्य ही नहीं, स्पृहणीय भी है। परसाई जी न सिर्फ़ एक लेखक के रूप में बल्कि एक व्यक्तित्व के रूप में समाज में अनंत काल तक 'प्रकाश स्तंभ' की तरह जीवित रहेंगे।

यह ग्रंथ पूरा पढ़ लेने के बाद एक ही प्रश्न मन में आता है कि परसाई जी के अंदर का व्यक्ति बड़ा है या लेखक। परसाई जी किस क़िस्म के लेखक हैं, यह शायद सहित्य समाज में विमर्श का विषय हो सकता है और अनंत काल तक बना रहेगा। पर इस बात पर तो चर्चा संभव ही नहीं है कि परसाई जी अपने समय में सबसे ज़्यादा पढ़े जाने वाले लेखक थे; इसलिए वे अख़बारों में ज़्यादा छपा करते थे किसी ज़रूरी ख़बर की तरह। वे जिस भी अख़बार में छपते थे, उस अख़बार की बिक्री रातों रात बढ़ जाया करती थी।

पूरी पुस्तक, एक पुस्तक न होकर परसाई जी पर शोध ग्रंथ बन गई है। इसमें तथ्यों की प्रामाणिकता प्रसंगों की चित्रात्मकता को जिस अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है, वह राय साहब की कल्पनाशीलता और उनके सामर्थ्य का एक छोटा सा उदाहरण मात्र है। इन्होंने पुस्तक की तैयारी के लिए बहुत समय दिया, संबंधित शहरों और मोहल्लों की यात्रा की, लोक संवाद किए, ज़रूरी दस्तावेज़ खंगाले। परिणामस्वरूप पुस्तक की प्रामाणिकता असंदिग्ध हो गई और सारे प्रसंग अपने आप ही वाचाल हो गए।

यह पुस्तक मात्र अपने प्रिय लेखक और गुरु की जीवनी लेखन मात्र नहीं है, बल्की परसाई के चरित्र के प्रभाव से उपजे लेखक राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय की ओर से गुरु दक्षिणा का प्रसाद भी है। राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जी हमें जिस लेखक परसाई से मिलवाते हैं, वह एक ख़ुशमिज़ाज लेखक है। उसके जीवन में कोई अभाव, तंगी या कोई आर्थिक-सामाजिक असुविधा है ही नहीं। वह ऐसे वातावरण में है कि वह हर पल खिल्ली उड़ा सके। ये धारणा ठीक से जम भी नहीं पाती है कि एक और चरित्र नायक जैसा उभरकर परसाई सामने आ जाता है। जो पाठक के सामने उन्हीं की तरह उठते- बैठते, बोलते-बतियाते परिस्थितियों से लड़ता है। परिवार के लिए अपने आप को भूलते, आर्थिक परिस्थितियों से जूझते, फ़िल्में देखते, राजनीति का शिकार होते हुए दिखाई देता है।

राय साहब के लिए सबसे बड़ी मुश्किल थी पुस्तक का फ़ॉर्मेट क्या होगा। इस बात का ज़िक्र उन्होंने कुछ यूँ किया है "पर कैसे लिखूँ। उसे लिखने का फ़ॉर्मेट ही नहीं पकड़ पा रहा था, तब उसमें परसाई जी का ज़िक्र भी चल आया था और मुझे उनकी जीवनी लिखने का सबसे उपयुक्त फ़ॉर्मेट मिल गया था। उपन्यासपरक जीवनी का फ़ॉर्मेट उनके जीवन को केंद्र में रखकर ऐसी रचना करना, जो पढ़ने में उपन्यास का रसानंद दे, पर उसमें नायक के जीवन का कोई भी सत्य थोथा न रहे, सरसाई जी के परसाई बनने की प्रक्रिया घटित हो।"

राय साहब ने उपन्यासिक प्रारूप को ही क्यों चुना, इसका रहस्योद्घाटन करते हुए वे कहते हैं- "मैंने परसाई जी के जीवन के वास्तविक प्रसंगों को ही लिया है, और जहाँ प्रसंग अनुकूल संवादों और वातावरण की ज़रूरत महसूस हुई मैं उसे भावनात्मक स्तर पर ले गया हूँ... । "

यह पुस्तक परसाई जी पर एक संपूर्ण ग्रंथ कैसे बन पाई, इस बात का रहस्योद्घाटन भी पुस्तक के प्रारंभिक पृष्ठों पर हो जाता है । "जीवनी इतिहास मात्र नहीं होती, जीवनी तो कला और भावनात्मक प्रतिफलन के साथ केंद्रीय पात्र के जीवन को अभिव्यक्त करती है । उसके जीवन के बंद परतों को खोलती है। मैंने यही प्रयास किया है कि जीवन के माध्यम से परसाई जी के अंदर बैठे परसाई जी का अनुसंधान। "

तो अब यहाँ प्रश्न ये उठता है कि जीवनी को उपन्यास की विधा में क्यों लिखा जाना चाहिए; क्योंकि अगर ऐसा न हो तो शायद जीवनी एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ मात्र बन जाए। वह किसी भी तरह से रचनात्मक साहित्य में जगह नहीं बना पाए और अगर बना भी ले तो आम पाठकों के दिल पर राज न कर सके; इसलिए शायद राय साहब ने जीवनी को उपन्यास की विधा में लिखा है।

पुस्तक की विधा क्या है, किसने लिखी है, उसकी भाषा शैली क्या है? यह पुस्तक अब इन सब सवाल-जवाब से ऊपर उठ चुकी है । मेरी दृष्टि में यह हरिशंकर परसाई जी पर सम्पूर्ण ग्रंथ है, जिसे आने वाली पीढ़ियाँ अपने शोध का विषय बनाएँगी । फिर कोई और नया राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय जन्म लेगा उसका कुछ और नाम होगा । और वह राय साहब पर ऐसा ही कोई ग्रंथ लिखेगा, हमारे जैसा पाठक महीनों तक उसे पाकर अभिभूत रहेगा, सालों तक उसे याद करेगा और अपनी पर्सनल लाइब्रेरी में रामचरितमानस और भगवद्गीता के साथ रख लेगा। तथास्तु!

लेखक : श्री राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय

जवलपुर, मो. 7389880862

समीक्षक : एकता अमित व्यास, गाँधीधाम (गुजरात)

मो. 98252 05804

समीक्षा

कमला दत्त जी की कहानियाँ और अंतर्दृष्टि

ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में रहकर वह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विकास करता है । मनुष्य के पास वाणी की शक्ति है जो विकसित होती हुई कथा में प्रचलित होती है और बढ़ते हुए साहित्य का रूप धारण करती है इसीलिए मानव-जीवन के यथार्थ-चित्रण का माध्यम आज साहित्य बन गया है, साहित्य समाज का दर्पण है, समाज की घटनाओं से प्रभावित होकर उसका शब्दांकन साहित्य में करता है जिसमें समाज एवं व्यक्ति का पूर्ण प्रतिबिंब दिखाई देता है अर्थात् साहित्य में किसी न किसी रूप में मानव-जीवन सन्निहित है। इसी जीवन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है कमला दत्त जी की कथा-दृष्टि जो भिन्न होते हुए भी नए समीकरण सामने लेकर आती है । इनकी कहानियों का प्लेटफार्म भरा-पूरा और समृद्ध है। प्रवासी लेखकों में अपनी अलग पहचान को स्पष्ट करती हैं । इनकी कहानियों के पात्र जीवन और जीवन संघर्ष से उबरकर सामने आते हैं जहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक-एक पात्र को एक वैज्ञानिक की भांति उनके

कमला दत्त

अन्तर्मन, पीड़ा, व्यक्तित्व, उनकी घुटन, त्रास, प्रेम, को अनुभव कर पाठक तक सामने लाती हैं। कहानी यहाँ सिर्फ कहानी नहीं बल्कि जीवन यथार्थ को सामने लाते हुए संघर्ष के साथ आगे बढ़ाती हैं। जिस भाव-भूमि से कहानी के प्लॉट शुरु होता है वो रोचकता पैदा करता है कि आगे क्या है, इनकी कहानियाँ भिन्न होकर भी नवीनता के आयामों से जुड़ती हैं । कथा लिखते समय वे प्रेरक

भावभूमि के मूल में मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति को सामने लेकर आती हैं। जैसे संसार की प्रत्येक वस्तुओं के प्रति जिज्ञासा निहित होती है वैसी ही यहाँ पात्रों के अन्तर्मन में है। और यही इनका दृष्टिकोण कुछ नया प्रयोग करने की ओर बढ़ जाता है। इनका अध्ययन मन ही मन कहानी के पात्रों के निश्चित और अटूट मन से जुड़ता है। समाज में लगातार बदलाव को भाषायी दक्षता के साथ प्रस्तुत करती हैं। समाज के यथार्थ, परिवेश, सामाजिक सरोकार, विमर्श, विचारधारा, कथात्मक संवेदना के साथ सामने लेकर आती हैं। कमला दत्त जी साहित्य सृजन में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। परिणामस्वरूप उनके साहित्य में परिवर्तित मान्यताओं का चित्र दृष्टिगत होते हैं। इसलिए ऐसा लगता है इनके पात्रों के साथ घटित होने वाली घटनाएँ हमारे आस-पास से होकर गुज़रती हैं।

कमला जी की कहानियों का स्त्री-बोध कमाल का है साथ पुरुषों से जुड़ा आत्मबोध नई कथात्मक सृष्टि को आगे लेकर चलता है। स्त्री-पुरुष जब मिलते हैं तो दोनों एक-दूसरे के प्रति अपेक्षा, इच्छाएँ महत्त्वकांक्षाएँ रखते हैं - या चाहते हैं, इनमें कभी प्रेम-निवेदन है तो कभी हठाग्रह-दुराग्रह मिला हुआ होता है विस्तृत रूप से फैले हुए, इन अभिन्न रूपों में जब किसी एक पक्ष में स्वार्थ, अहम्, छल, दबाव या जबरदस्ती आ जाती है तो संघर्ष, दुःख-पीड़ा और अंत में अन्याय के विरुद्ध लड़ाई शुरु होती है। यह लड़ाई समाज की, सार्वजनिक होती है, संकीर्ण मानसिकता, दृष्टिकोण के विरुद्ध वैचारिक उदारता - विस्तृत मानसिकता की आवश्यकता हो जाती है यह भाव कमला जी की कहानियों में दिखते हैं।

सृष्टि में जो कुछ भी है शाश्वत है उसके हकदार, भागीदारी स्त्री-पुरुष दोनों हैं फिर भी मानव समाज में स्त्रियों को जबरदस्ती क्यों दबाया जाता है? इस अन्याय के प्रति आवाज ही चेतना है। किसी एक के प्रभुत्व से दूसरे का शोषण, दासत्व यह न्याय नहीं है। **'धीरा पंडित, केकड़े और मकड़ियाँ'** कहानी की नायिका धीरा एक आत्मनिर्भर लड़की है जिसका विवाह जीत से होता है, संदेह और अनहोनी से जुड़ी ये कहानी धीरा के संघर्ष की कहानी है जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों की भूमिका की परख समझने की कोशिश करती है इन मानसिक यन्त्रणाओं के बीच वह कोशिश बहुत करती है पर न वह हिन्दुस्तान वापस आ पाती है न ही पति जीत के साथ अमरीका में सुख से रह पाती है तलाक पर जाकर संघर्ष कहानी को आगे ले जाता है। आत्मसंघर्ष, आत्ममंथन की कहानी अजीब आंतरिक रूप को स्पष्ट करती है जहाँ धीरा दुबारा बंधन नहीं चाहती चेतना और मुक्ति की लड़ाई, अधिकार और स्वामित्व पाने की नहीं बल्कि समान भाव, सम्मान, समानता के लिए है। यह जाग्रति अन्यायकारी, अहंकारी मानसिकता के प्रति जागृत होकर न्यायपूर्ण उत्तर पाने की कहानी है। आज के समय की महिला किसी क्षेत्र में उपेक्षित नहीं रहना चाहती, वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान सहभागिता चाहती है। संस्मरणात्मक शैली में रचित कहानी **'तुम निहाल दई'** एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो किसी भी रूप में आश्रित नहीं रहना चाहती, स्वाभिमान से भरी ऐसी ही स्त्री की ये कहानी है, अपना परिचय वह खुद है, अपने अंतिम संस्कार के कपड़ों तक का वह खुद इंतजाम करती है, ऐसी ही स्वाभिमानी महिला की कहानी है। जहाँ प्रश्न उठता है क्या बचपन से ही इस तरह का कोई जुझारू चरित्र आदर्श के रूप में उसके सामने था?

कहानी **'वीनस फ्लाई ट्रेप'** सुखी परिवार में सुखी स्त्री के चित्र पर प्रश्न करती है। सुधीर जो नीला का पति है वो तय करता है कि वह खुश है पर कैसा खुश पति, बच्चा, सुख-सुविधा? तो कमी कहाँ है? आधुनिक स्त्री परम्परागत सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ़ बोलती है, उसके गुण और धर्म बदल गए हैं, जिन आदर्शों पर वह गर्व करती रही, मरती-मिटती रही, अब वह अपने जीवन लक्ष्य की बात करना चाहती है। वह आत्मनिर्भरता, स्वतन्त्रता और अपने व्यक्तित्व की सार्थकता भी चाहती है। नीला उचित और अनुचित, संगत और असंगत विचार की परिभाषा समयानुसार बदलना चाहती है। मनुष्य की परिस्थितियाँ, उसके ज्ञान और विचार कभी एक से नहीं रहते वह निर्णय के पूर्णरूपेण अधिकार के लिए स्वतंत्रता चाहती है। वह चाहती है वह बरगद की तरह हो जाए। उसकी अनगिनत जड़ें वातावरण में तैर जायें और सभी कुछ सोख लें क्योंकि उसे लगता है वह 'वीनस फ्लाई ट्रैप' में बंद हो गई है। वह अधिकार चाहती है। यह कहानी इस भाव तक पहुँचती है जैसे वह समग्र नारी जगत की आवाज़ बनना चाहती हो। अपने आप के लिए जाग्रत होना चाहती है। यह जागृति अमरीका की साराह हेल जिन्हें नारी मुक्ति चेतना आंदोलन की प्रथम महिला प्रवर्तक माना गया है ऐसी ही आवाज़ से मुखरित होती है, उसकी चेतना की आवाज़।

'गंगामूरती' कहानी अलग प्लॉट के साथ आगे बढ़ती है जहाँ शोषण भी है और उस पर उठते हुए सवाल भी हैं, पात्रों के चरित्र के साथ समाज के तत्कालीन रूप का भी चित्रण होता है। यहाँ पुरुषवादी शोषण का रूप भी कलात्मकता के साथ दिखाई देता है जब गंगामूरती पिटने से, लहुलुहान होने के बाद भी यह कहती नज़र आती है कि "अपना ही मर्द था कोई गैर तो नहीं।"

ऐसे परिवारों में स्त्री इच्छा और उसकी आकांक्षा का सर्वदा दमन होता है। पुरुष-प्रधान समाज में वह पशुवत मूक जीवन बिताती है। आत्माभिव्यक्ति का अवसर उसे कहाँ। उसका सम्पूर्ण जीवन कठपुतली मात्र बन करके रह जाता है।

ग्रीक माइथोलॉजी से जुड़ी कहानी **'प्रमथ्यु'**, स्त्री-पुरुष के प्रेम और बिछोह को उद्घाटित करती है। ये कहानी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से भी कहीं न कहीं कुछ रूप में जुड़ती है। ये एक ऐसी कहानी है जो पाठक को गहराई के साथ जोड़ती है। कहानी में आये कथोपकथन बड़े रोचक ढंग से प्रकाश डालते हैं, मार्मिकता और स्वाभाविकता दोनों ही भावनाओं को यहाँ चित्रित किया गया है प्रेम के प्रौढ़ स्वरूप का दर्शन यहाँ होता है। **'ज्योति'** कहानी अंतर्मन से ऐसे समाज की कहानी है जहाँ भौतिक सुख एकत्रित करना सुख का प्रतीक नहीं है, ज्योति पात्र कहानी की शुरुआत में ही छटपटाता दिखता है, जहाँ कोई नहीं जानता है कि उसका कारण क्या है? अपने देश से दूर रह रहे लोगों का एकाकीपन उजागर करता है। इस कहानी का नायक कैसे सभी चीजों को व्यवस्थित करने में अपना जीवन लगा देता है पर संवेदना के स्तर पर पीछे रह जाता है, न ही उसका किसी से प्रेम संबंध ही रहा और न ही किसी तरह का जुड़ाव किसी अपने के साथ होने की कभी कैसे भौतिकता के मादक सुख पर हावी होती हुई ये कहानी दिखती है जहाँ अकेलापन है। जिन्दगी के आनन्द से दूर का अकेलापन जो अक्सर ऐसे लोगों को दर्शाता है जो जीवन को बहुत सुव्यवस्थित देखना चाहते हैं। ज्योति अपने लिए खुद सोचता है कि उसे किसी की बद्दुआ तो नहीं लग गई.... लग गई लगता है।

'जाँ पाँ' कहानी प्रेम के अलग रूप के साथ सामने उभरकर आती है, देह की जरूरतें, प्रेम के अविश्वास रूप में भी हैं, विज्ञान भी है अनुसंधान, समाज भी है, 'जाँ पाँ' की मेहनत उसकी रिसर्च को उसका बॉस चुरा लेना चाहता था, 'जाँ पाँ' ईमानदार, असाधारण तौर पर ईमानदार था। भाषागत तौर पर इस कहानी में अंग्रेज़ी शब्दों की बहुलता है साथ ही विदेशी कल्चर को भी सामने लाया गया है साथ ही पानी, चट्टानें, मखमली कालीन जैसे चित्रण इसे काव्यात्मक रूप भी देते हैं।

'अच्छी औरतें' हिन्दुस्तान की सेक्सवर्कस की गाथा है, जहाँ एक ओर ऐसी महिलाओं की बेबसी है वहीं दूसरी ओर उनके उद्धार का चित्रण भी है। प्रगतिशील सोच को लेकर आगे बढ़ती ये कहानी है। पात्रों के वर्ग, उनका अन्तर-बाह्य व्यक्तित्व, विशेषताएँ, आकृति, वेशभूषा, वार्तालाप का ढंग जैसे अनेक उपकरणों को अपनाकर सचेतन दृष्टि दी है। ये पात्र स्वयं अपनी समस्या का प्रतिनिधित्व करते नज़र आते हैं जो स्वाभाविक भी है। लेखिका ने कथा के चरित्र संतुलन को साध्य किया है।

कमला दत्त जी की कहानियों को पढ़कर यह अनुभव होता है कि इनकी विचारधारा परम्परागत होने के साथ-साथ आधुनिक है। जीवन दृष्टि और मूल्यबोध का परिचय मिलता है जहाँ विकासमान सामाजिक, राजनैतिक-व्यवस्था भी है। नये मूल्यों और मान्यताओं को स्थापित किया गया है, जीवनयापन के लिए स्त्री को भी पुरुष के समान अवसर मिलना चाहिए, असमानता और अन्य बन्धनों से अगर पुरुष मुक्त है तो स्त्री भी मुक्त होनी चाहिए।

कमला जी ने नवनवोन्मेषशाली विचारों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कमला दत्त जी ने अपनी कहानियों में न केवल समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक क्षेत्र की परिवर्तित परिस्थितियों को रेखांकित किया है अपितु परिवर्तनों की भावी परिणति की ओर भी संकेत किया है। उन्होंने समाज के परम्परागत मूल्यों, मापदण्डों, रूढ़ियों का विरोध करते हुए तर्क के आधार पर नवीन मूल्यों और विचारधाराओं की स्थापना भी की है। वे समसामयिक परिस्थितियों के प्रति आँखें बंद नहीं करना चाहती ऐसा लगता है मानो उन्होंने इन संघर्षों को निकट से देखा, परखा है और इसका उपाय भी सुझाया है। कमला जी ने बदलती परिस्थितियों के अनुरूप विचारधाराओं और विषयों का समावेश भी किया है।

–जॉर्जिया 30030, यू. एस. ए.
ईमेल : kdutt1769@gmail.com

समीक्षा

कमला दत्त की कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन

रेनू यादव

कमला दत्त साहित्य में जाना-पहचाना किंतु कुछ कम नज़र आने वाला नाम है, किंतु जितना भी नज़र में है उससे उनको दरकिनार नहीं किया जा सकता । 'मछली सलीब पर टंगी', 'कमला दत्त की यादगार कहानियाँ', 'अच्छी औरतें' इनके कहानी संग्रह हैं। इन्होंने नाटक में अपनी गहरी रूचि के कारण टैगोर द्वारा रचित 'मुक्त धारा' और 'नाटेर पूजा', प्रेमचंद की 'गोदान', कमलेश्वर की 'अधूरी आवाज' के नाट्य रूपांतरण में मुख्य भूमिका निभायी हैं। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' में बादल सरकार के 'पगला घोड़ा' में स्त्री भूमिका से काफी सराही जाने लगीं।

लेखिका ने अपनी पुस्तक की भूमिका एवं समर्पण में बार-बार याद दिलाया है कि उन्हें लिखने के लिए डॉ. सुनीता जैन, डॉ. नरेन्द्र मोहन और निरूपमा दत्त ने प्रेरित किया है। सचमुच, इनकी कहानियाँ पढ़ते समय सुनीता जैन का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। किंतु सुनीता जैन की कहानियाँ मनौवैज्ञानिक कहानियाँ हैं और कमला दत्त की कहानियों को पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक कहानियाँ नहीं कह सकते, लेकिन मनोविज्ञान का बहुत बड़ा भू-भाग अपने अंदर समेटती नज़र आती हैं। जो कि 'मछली' कहानी में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कहानी की नायिका खुद को राजकुमारी के समान समझती है उसे सच भी करना चाहती है, लेकिन यह भी सच है कि राजकुमारी हर लड़की नहीं हो सकती। "लड़की वैसे सपनों में अब भी जब-तब राजकुमार तलाशती रहती है। पर राजकुमार से दिखने वाले भेदियों से बचने के लिए सही राजकुमार की तलाश में लड़की ने अपने घर को किले में तब्दील कर लिया है जिसे आम आदमी लाँघ नहीं पाते और राजकुमार नकारते हैं"। (दत्त, कमला. कमला दत्त की यादगार कहानियाँ. पृ. 63)

ऐसे में जब राजकुमार (जो कभी राजकुमार नहीं होता) लड़की के करीब आता है तब लड़की उसे अपने सपनों का राजकुमार समझ अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है। पर लड़की यह भूल जाती है कि राजकुमार भी परियों को धोखा देते हैं। लड़की भी अपने राजकुमार से धोखा खाती है। उसके साथ प्यारे एन्टीक बेड पर बहत्तर घंटे साथ बिताने वाला राजकुमार रेशमी चादर को मरोड़ उसमें हमेशा के लिए सिलवटें डाल कर चला गया और राजकुमारी जो कभी परी होने के एहसास भरी हुई थी अब राजकुमार के गंध को महसूसने और रोने के लिए विवश है। इसलिए वह दर-दर भटकती छोटी-छोटी बात पर रोती-बिलखती और गंधाती रहती है। ये कहानी सुधा ओम ढ़ींगरा की कहानी 'उसकी खुशबू' और सचिन कुंडालकर की लघु फिल्म को विस्तृत रूप देने वाले अनुराग कश्यप की फिल्म 'अइया' की याद दिलाती है। 'उसकी खुशबू' की नायिका अपने प्रेमी से प्राप्त धोखे का बदला लेने के लिए उस जैसे परफ्यूम लगाने वाले लड़कों की हत्या करना शुरू कर देती है तो 'अइया' की नायिका रानी मुकर्जी अपने प्रेमी के पीछे बेसुध होकर चल देती है। लेकिन 'मछली' की नायिका शार्क मछली के अधनुचे हिस्से को देखकर रोने-धोने के बाद यह समझ लेती है कि हर अधनुचे के पीछे कोई न कोई उससे अधिक ताकतवर है और वह व्यथित होने के बजाय अपनी ताकत को बटोर आगे बढ़ने का फैसला लेती है।

कमला दत्त

'अच्छी औरतें' कहानी में लेखिका समाज के अच्छे शब्द पर कटाक्ष करती दिखायी देती हैं। देखा जाय तो अच्छा होना अपने आप में सबसे विवादस्पद शब्द है। समाज का वह हिस्सा अच्छा है जहाँ लोग परिवार के साथ इज़्ज़त का नकाब ओढ़े जी रहे हैं और उनके घरों की ही औरतें अनेक अत्याचारों की शिकार हो रही है अथवा वे औरतें जिन्हें इज़्ज़तदार घरों के मर्द ही उन्हें बदनाम करने अथवा वेश्या बनने पर मजबूर कर चुके हैं। उन मर्दों को ऐसे वेश्यालयों में जाने पर यह भी नहीं पता कि पहले जिन औरतों के साथ वे सो चुके हैं अब उन्हीं के बेटियों के साथ सो रहे हैं। विवाह जैसे सामाजिक तमगे को झुठलाती वेश्याओं के जीवन की करूण और क्रूर कथा हैं 'अच्छी औरतें'। जो एड्स जैसे खतरनाक बिमारियों से बचने के लिए कण्डोम और दवाइयों का

इन्तज़ाम खुद कर लेती हैं इसलिए वे अच्छी हैं या फिर जो चुप्पी का ज़हर पीकर अपनी मालकीन की बात मान लेती हैं इसलिए अच्छी हैं अथवा मालकीन जिसे पहली बार किसी डॉक्टर ने बहन कहा इसलिए वह अच्छी है अथवा डॉक्टर से इज़्ज़त के दो बोल सुनकर खुद को अच्छी समझने लगी है, अथवा डॉक्टर उन्हें अच्छी औरतें समझ कर उन पर रहम करता है और मुफ्त में कण्डोम तथा दवाईयाँ उपलब्ध करवाता है। साथ ही सोशल वर्कर के ज़रिए उनकी स्थिति में सुधार के लिए प्रयास भी करता है। लेकिन यदि ऐसा है तो वह अपनी बेटी को सोशल वर्कर क्यों नहीं बनने देना चाहता और क्यों अचानक से कह उठा, "नहीं सोशल वर्कर कभी नहीं, पांडे विधवा है। जहाँ देखो पाँच-छह मुस्टंडों के साथ होती है। हमेशा आदमियों से घिरी होती है। अच्छी औरत नहीं"। (दत्त, कमला. अच्छी औरतें और अन्य कहानियाँ. पृ. 56)

तो क्या डॉक्टर सोशल वर्कर को सेक्स वर्कर से कम नहीं समझता, इसलिए वह अच्छी औरत नहीं है...?

कमला दत्त लाहौर से हैं और पंजाब विश्वविद्यालय से उच्च-शिक्षा हासिल की हैं। इसलिए वे पंजाब की लड़कियों को विदेश ब्याहने की हालत से परिचित हैं तथा उनकी परिस्थितियों से आहत भी। 'धीरा पंडित, केकड़े और मकड़ियाँ' कहानी में कहानी की नायिका धीरा उन नर केकड़ों की किस्म से पीड़ित है जो हमेशा ऐसी मादा की तलाश में रहते हैं जिनकी केंचुल उतरी रहती है, जिनका विश्वास जीतने के बाद वे उन्हें क्षत-विक्षत कर किसी और मादा की तलाश में निकल जाते हैं। धीरा का पति 'जीत' भी उन्ही नर केकड़ों की प्रजाति का प्रतीत होता है जो धीरा से विवाह कर उसके साथ कुछ समय के लिए खुश रहने का नाटक कर वापस विदेश लौट जाता है। धीरा पंजाब से निकल कर विदेश में अपने पति 'जीत' को तो ढूँढ़ लेती है परंतु उसे पाकर भी पा नहीं सकी। जीत अपनी प्रेमिका के लिए पराये देश में धीरा को छोड़ जाता है। ऐसे में वह न तो घर लौट सकती है न ही वह वहाँ रह सकती है। उसने रास्ता चुना स्वावलंबी होने का लेकिन फिर फंस गयी एक अन्य केकड़े के बीच। जहाँ से उसे डॉ. जर्सिकी निकालने का प्रयास करते हैं। सुधा ओम ढ़ींगरा का उपन्यास 'नक़्काशीदार केबीनेट' और सुदर्शन प्रियदर्शिनी का उपन्यास 'न भेज्यो बिदेश' इस मुद्दे पर आधारित है। मुद्दा एक है पीड़ा भी लगभग एक जैसा है लेकिन सुदर्शन प्रियदर्शिनी की नायिका पीड़ा में ही अपना दम तोड़ देती है और सुधा ओम ढ़ीगरा की नायिका उस चक्रव्यूह से बाहर निकल भागती है। कमला दत्त अपनी नायिका को मकड़ी के माध्यम से बाहर निकालती हैं कि एक मकड़ी ऐसी भी होती है जो नर द्वारा जबरदस्ती के बाद उसे जिन्दा निगल लेती है। लेकिन अत्याचार सहने और बदला लेने के बीच भी एक रास्ता होता है जिसे चयन कर अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाया जा सकता है।

'तीन अधजली मोमबत्तियां...' कहानी में 'सेंटर फॉर न्यू बिगिनिंग' में आये मालीश के लिए हर अजनबी अपने अपने अकेलेपन को दूर करना चाहता है। 72 घंटे में एक दूसरे को स्पर्श कर मालीश के माध्यम से एक दूसरे की संवेदना समझना, एक दूसरे के दुःख-दर्द को बाँट लेना और तन्हाई को कोसो दूर ढ़केल कुछ समय के लिए ही सही, खुश रह लेने की चाह में खुश हो जाना जीवन में एक शुरूआत ही तो हैं। यौनिकता से दूर अजनबियों को सहलाना, छूना, उनके साथ निकटता, अंतरंगता की एक्सरसाइज में संवेदनशीलता मन को शांति देने का एक माध्यम ही तो है। (दत्त, कमला. अच्छी औरतें और अन्य कहानियाँ. पृ. 89)

लेकिन यदि किसी उन्हीं अजनबियों में से कोई अपना हो जाये... उस अजनबी को पता भी न चले कि जिसे वह स्पर्श कर रहा है वह उसे अंदर तक संजो रही है, स्पर्श का स्पर्श उसे सदियों तक सताये, तब ऐसी हालत में अजनबीपन की तड़प सदियों तक तड़पती है। जिसने तीन अधजली मोमबत्तियों पर तीन दिन की दोस्ती की मोहर जला नायिका के हृदय में 'न्यू बिगनिंग' तो कर दिया, लेकिन खुद के हृदय में मोमबत्ती बुझा आगे बढ़ गया। ऐसी 'बिगनिंग' को नायिका बरसों बाद भी स्पर्श करते हुए स्मृति में खोई हुई है।

"मेरे घर की खुली खिड़की
के नीचे से
वो हर रोज़
गुजरता है
कभी-कभार
ऊपर
देख भर
लेता है
मेरा सब कुछ
संवर
जाता है"

(दत्त, कमला. कमला दत्त की यादगार कहानियाँ. पृ. 63)

प्रेम की धार पर चलना इतना आसान तो नहीं, वह भी एक तरफा प्रेम में। 'अप्रेम कथा पारो-देवदास' की नायिका ने एकतरफा प्रेम में अपने आपको संवारने की कोशिश किया लेकिन नायक की

नकार ने उसे तोड़ कर रख दिया और जब वह संभलने की कोशिश करती है तब विवाहित नायक अपनी पत्नी से उब कर उसे अपनाने का प्रयास करता है। ऐसे में नायिका अपने स्वाभिमान को प्रेम से ऊपर मानते हुए अपने सपनों के राजकुमार से दूरी बना लेती है। वह बिकाऊ नहीं कि जब चाहे नायक उसे खरीद ले और जब चाहे त्याग दे। वह प्रेम में गांधारी की तरह अंधी बनना चाहती बल्कि प्रेम में स्त्री-सशक्तीकरण का मिसालल पेश करती है। वह देवदास की तरह प्रेम तो करना जानती है लेकिन देवदास की तरह मरना नहीं चाहती, वह प्रेम में निछावर होना तो चाहती है लेकिन अपने आपको भूलना नहीं चाहती।

'प्रेतात्मा' कहीं नहीं होती बल्कि अपने ही जीवन के कर्म का भोग होता है और पुनः पुनः लौट आता है। क्यूबेक सिटी में फंसे नायक की गर्भवती बहन प्रिस्ला ने बहुत पहले संखिया-आर्सेनिक लेकर अपने जीवन को समाप्त कर लिया था और जब उसने शुभा को उसके पति द्वारा प्रताड़ित होते हुए देखा तो उसे प्रिस्ला की स्मृत्तियों ने घेर लिया। वह शुभा को बचाकर प्रिस्ला के मौत की ग्लानि से मुक्त होना चाहता था लेकिन शुभा उसी तड़प में जीना सीख गयी थी। शुभा का कुछ न कहकर नीली आँखों का प्यार सब कुछ कह गया।

'तुम निहाल दई' की स्वाभिमानी नायिका राजेश्वरी ने विधवा होकर समाज से संघर्ष करते हुए अपने तीनों बच्चों की परवरिश की किंतु जब उसकी उम्र ने जवाब दे दिया तब बच्चों ने भी साथ छोड़ दिया। राजेश्वरी ऐसी परिस्थिति में भी अपने बच्चों पर आश्रित नहीं रही। उसकी स्वतंत्र विचारधारा ने उसकी पोती को प्रभावित किया और पुराने पीढ़ी और नयी पीढ़ी के अंतर को पाटने का प्रयास किया। कहीं न कहीं राजेश्वरी अपनी नयी पीढ़ी यानी पोती में अपनी बेटियों को देखती थी जिन्हें दहेज के डर से जिन्दा ही मार दिया गया था। पोती की इच्छाओं को पूरा होने की चाह अपनी बेटियों की इच्छा को पूरा करने की चाह थी। पुत्र तो अपने थे लेकिन पोती अपनी आत्मा की राह थी। यह कहानी एक स्त्री के स्वाभिमान, स्वतंत्र विचार और सामाजिक विवशता की कहानी है।

'स्टेम सेल' तथा 'टिस्यू इंजीनियरिंग' में अपना विशेष योगदान देने वाली प्रसिद्ध डॉक्टर कमला दत्त की कहानियाँ अति-बौद्धिकता का साथ छोड़ नहीं पातीं, इसीलिए कहानियों में सर्वथा सहज प्रवाह का अभाव दिखायी देता है। 'जां पां' और 'ज्योति' कहानियाँ इनके वैज्ञानिकता की प्रमाण हैं। इनकी कहानियाँ कई परतों में मनःसंश्लिष्टता को समेटे होती हैं। कहानी के एक ही पैरेग्राफ में मन की चंचलता कई-कई जगह घूम आती हैं जिससे पाठक भूल-भूलैया में खो जाता है और कहानी का मूल मुद्दा भी।

लेकिन हमें यह नहीं भूलना होगा कि लेखिका एक डॉक्टर हैं, साहित्य में उनकी अपनी रूचि है। शहर और नगर की समस्याओं को उन्होंने गहरायी से देखा है। यही नहीं, लेखिका की पारखी दृष्टि से पशु-पक्षी, जीव-जन्तुओं भी अछूते नहीं रहे। लगभग सभी कहानियों में लेखिका ने पशु-पक्षी, जीव-जन्तुओं के उदाहरण से मानवीय समस्याओं सुलझाने का प्रयास किया है। इन सबके साथ व्यक्ति-मन के उलझनों के धागों को बड़ी गहराई से महसूस किया है और उन हर धागे को पकड़ कर अपनी कहानी में बुनने का प्रयास करती हैं। शायद इसीलिए किस्सागोई लेखिका की अपनी निजी अनुभूति-सी महसूस होने लगती है। पात्रों के साथ हो रहे हर छोटी-छोटी घटनाओं की उधेड़-बुन कहानी को निबंधात्मक और विवरणात्मक बना देते हैं, जो संवेदना के स्तर पर कमजोर प्रतीत होने लगती हैं, जिसके कारण मजबूत मुद्दा होते हुए भी वे पाठकों के मन पर मजबूत पकड़ नहीं बना पातीं। इन सबके बावजूद ये कहानियाँ विज्ञान में रूचि जगाती हैं। जीव-जन्तु और पशुओं से जुड़ी अनेक जानकारियों से अवगत करवाती हैं। यदि ये कहानियाँ कहानी न होकर कोई मानव-विज्ञान से जुड़ी निबंध होतीं तो शायद ये और अधिक सफल होतीं। अनभिज्ञता से भिज्ञता की ओर जा पातीं।

असिस्टेंट प्रोफेसर, भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग
गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस-वे,
गौतम बुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा – 201 312 (उ.प्र.)
ई-मेल- renuyadav0584@gmail.com

समीक्षा

"अम्बर परियाँ या परियों का अम्बर (?)" : सन्दीप तोमर

सन्दीप तोमर

पुस्तक का नाम: अम्बर परियाँ
लेखक: बलजिंदर नसराली (अनुवाद- सुभाष नीरव)
प्रकाशन वर्ष: 2023
मूल्य: 350 रुपए
प्रकाशक: राधाकृष्ण पेपरबैक्स

अम्बर परियाँ सद्य प्रकाशित कृति (उपन्यास) का नाम है जो मूलतः पंजाबी में छपा, लेकिन इसका हिन्दी अनुवाद सुभाष नीरव ने किया जो 2023 में राधाकृष्ण पेपरबैक्स से छपा। अनुवाद के साथ एक बात बढ़िया भी होती है और ख़राब भी कि अनुवाद स्वयं में एक स्वतंत्र विधा होकर भी मूल कृति के इर्द-गिर्द ही होती है, जाहिर तौर पर लेखक के साथ अनुवादक के हिस्से भी कृति की अच्छाई/बुराइयाँ साथ-साथ चलती हैं। इस उपन्यास को लिखते समय बलजिंदर साहित्य लेखन की वर्तमान पद्धतियों के बजाय पंजाबी गल्प में फंटेसी को अपनाते हुए लेखन करते हैं, अपने समय की शिनाख्त करते हुए वे कथा में ताजगी और किस्सागोई में आकर्षण को बनाये रखते हैं।

पंजाब में जन्में बलजिंदर नरसाली बहुत कम समय और बहुत कम लेखन के बावजूद पंजाबी साहित्य में एक प्रतिष्ठित नाम है, अब तक उनकी ग्यारह कहानियाँ और तीन उपन्यास प्रकाशित हैं, डाकखाना खास कहानी संग्रह एक पुरस्कृत कृति है, अम्बर पारियाँ भी पंजाबी साहित्य में खूब चर्चित उपन्यास रहा। हिन्दीअनुवाद पर एक लाख का पुरस्कार भी मिला।

बलजिंदर द्वारा रचित इस उपन्यास "अम्बर परियाँ" का प्रकाशन राधाकृष्ण पेपरबैक्स द्वारा किया किया गया है। उपन्यास को कुल 21 अध्यायों में कथा को समेटा गया है, जिन्हें अलग-अलग अध्याय का नाम देकर प्रस्तुत किया गया है। अध्यायों को नाम देने की प्रवृति उपन्यास लेखकों में कम ही देखने को मिलती है और इसका कोई खास मकसद भी समझ में नहीं आता। लेखक अध्याय लिखते हुए कई बार इतना स्वछन्द हो जाता है कि कथा-क्रम बाधित होने लगता है और कई बार कथा का तारतम्य बैठा पाने में लेखक स्वयं उलझ जाता है। यहाँ भी हर अध्याय की कहानी एक-दूसरे को रिलेट तो करती है, एक-दूसरे में खूब गुंथी हुई भी है लेकिन कथा का काल बदलते हुए पाठक स्वयं उलझन महसूस करता है।

पूरी उपन्यास कथा अम्बर और जोया दो मुख्य पात्रों की प्रेम कहानी है, जिनमें अम्बर शादीसुदा है लेकिन पूरे उपन्यास में वह सुन्दर स्त्रियों को पाने, उनका उपभोग करने के लिए लालायित प्रतीत हुआ है, बावजूद इसके वह जोया को भरपूर प्रेम करता है, यहाँ सवाल ये हो सकता है कि क्या सौन्दर्य आकर्षण ही नायक के लिए प्रेम का मापदंड है? अम्बर एक डिसिप्लिन्ड प्रोफ़ेसर है, वह समय का पाबन्द है, क्लासेज लेना वह अपन पहला कर्तव्य समझता है लेकिन प्रेम के मामले में उसे अपनी छात्राएं भी आकर्षित करती हैं। कला और साहित्य प्रेमी अम्बर का बचपन और जन्म तक संदेहास्पद रहा बावजूद इसके कला और साहित्य के प्रति उसका लगाव की झलक बचपन से ही मिलती है। वह अपने सहपाठियों में एक्टर और ऐक्ट्रेस खोजा करता था।

अम्बर परियाँ बलजिंदर का ऐसा उपन्यास है जिसका केंद्रीय भाव प्रेम है यहाँ स्त्री-पुरुष प्रेम, पति-पत्नी प्रेम, विवाहेत्तर प्रेम, विवाह पूर्व प्रेम, भाभी-देवर/जेठ के बीच प्रेम और संतानोत्पत्ति तक के तमाम किस्से हैं। स्त्री-संघर्ष, नारी जीवन के पक्ष को बहुत सीमित रूप में यहाँ देखा जा सकता है। अम्बर द्वारा पत्नी किरनजीत को आगे पढ़ाना स्त्रीवाद के चलते न होकर सिर्फ इसलिए है ताकि भविष्य में वह प्रेमिका के साथ रहे तो उसे गुजारे के लिए कुछ देना न पड़े।

साहित्यिक संसार में बलजिंदर अपने विशिष्ट शिल्प और भाषिक मिज़ाज़ की वजह से अलग से रेखांकित किये जाने चाहिए। उनके पास तरह-तरह के बाहरी अनुभवों और दृश्यों को अभिव्यक्त करने की लगभग जादुई क्षमता है। इस जादू को उनका कहन माना जा सकता है।

बलजिंदर का यह उपन्यास ''अम्बर परियाँ' उनके वैशिष्ट्य का अनुपम उदाहरण है। इसे बलजिंदर के लेखन का चरम बिंदु कहूँ तो ये अतिश्योक्ति नहीं होगी। उनके लेखन की रवानगी ऐसी कि आप इसे जल्दी से जल्दी पढ़ना चाहते हैं, लेकिन ठहर-

ठहर कर पढ़ने को मजबूर होते हैं। उपन्यास पढ़ कर पाठक तृप्ति का अनुभव करता है। यह तृप्ति इसलिए भी मूल्यवान हो उठती है कि इस तक पहुंचने की यात्रा लेखक के मिश्रित अनुभवों का पुलिंदा है। उपन्यास जैसे चलचित्र की भांति आँखों के सामने से गुजरता है, किरदारों की रंगीन और श्याम-श्वेत छायाएँ जेहन में अंकित होती चलती हैं। एक ख्याल यह आता है कि बलजिंदर बहुत सधे हुए निर्देशक हैं जो हर पात्र से उसका किरदार निभवाना जानते हैं। पात्रों के अन्दर से धीरे-धीरे किरदार उभरते हैं। और रुपहले पर्दे पर अंकित होते जाते हैं। उनके दुख-सुख, उनकी हंसी और रुलाइयां, उनकी यातनाएं, उनके संघर्ष सब परदे पर सामने आते हैं।

उपन्यास के आरंभ में ही वे अम्बर और चरनी नाम की सहपाठी का जिक्र करते हुए संकेत कर देते हैं कि अम्बर का अस्तित्व परियों से ही है। हालाँकि अम्बर की मेधा का भी जिक्र भी वे करते चलते हैं- 'अम्बर जब पंजाबी वाली कक्षा में कहानी पढता तो वार्तालाप को खूब अच्छी तरह नाटकीय अंदाज में बोलता था। '

उपन्यासकार ने सवाल भी खड़े किये हैं- उनके सवाल प्रदेश में प्रवास, विवाह संस्था, प्रेम, विवाहेत्तर-प्रेम से हैं। इस उपन्यास के कुछ अंश ऐसे हैं जो पाठक के ज़ेहन में अंकित हो जाते हैं- ऐसे मांगने पर रिश्ता कब किया करते हैं ये साले जट्ट। (पृष्ठ- 15), पूंछिये और कश्मीरी एक-दूजे को पसंद नहीं करते। (पृष्ठ- 18), पुलों के बग़ैर लोगों तक पहुँचा नहीं जा सकता था और इन दोनों के बीच कोई पुल नहीं था (पृष्ठ-21), ... खूबसूरत लडकियाँ तो तेरे आगे-पीछे घूमेंगी, पर पहले कुछ बन तो ले (पृष्ठ- 24), वैसे हूँ तो मैं तेरे अंकल की उम्र का ही, लेकिन अब भी तेरी उम्र की लड़कियां मुझ पर मरती हैं (पृष्ठ- 25), अब लोग सरकारी नौकरी वाले को भी पसंद कर लेते हैं, हिस्से में आने वाली जमीन चाहे कम हो (पृष्ठ- 31) तेरे कंजर बाप ने अंग-अंग तोड़ रखा है। (पृष्ठ-35) तू जिज्ञासु इंसान है और जिज्ञासु इन्सान यदि इमानदार भी हो तो वह बढ़िया अध्यापक बन सकता है। (पृष्ठ- 49) एक उम्र के बाद बन्दा अपनी खूबसूरती के लिए खुद जिम्मेदार होता है। (पृष्ठ- 50) भैण जी, कार और जनानी बेशक ख़राब ही हों, पर बना-सँवार कर और प्यार के साथ रखनी चाहिए। नहीं तो ये बन्दे का जुलूस निकाल कर रख देती हैं। (पृष्ठ- 53)

लेखक समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना पर भी नजर रखता है, कस्बाई संस्कृति में शिक्षिकाओं को बहनजी कहने का चलन रहा है, वे लिखते हैं- "यह स्कूल के लडको की मज़बूरी थी कि उन्हें नादिरा को बहन जी कहना पड़ता था, क्योंकि सभी अध्यापिकाएं बहनजी थी। (पृष्ठ-55), अम्बर भावुक इंसान है, बार-बार प्रेम कर बैठता है, सुन्दर लड़कियां उसकी कमजोरी हैं, लेकिन वह प्रेम में हर स्तर पर उपलब्ध होता है, नादिरा को 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' किताब देना उसकी चेतना और बौद्धिकता को दर्शाता है। (पृष्ठ-55)... अम्बर की तारीफ में वह अवनीत का सहारा लेता है- अम्बर उसको एक ऐसा परिंदा प्रतीत हुआ जो कालेज के सभी प्रोफेसरों की पढाई से ऊपर, बहुत ऊपर उड़ता फिरता है। (पृष्ठ-57), बलजिंदर बारीक नजर से समाज का विश्लेषण करते हैं, गॉव-कस्बें में संगीत को गलत नज़र से देखा जाता था, लेखक लिखता है- अवनीत के पापा उसके गायक बनाने के हक़ में नहीं थे, "बेटा, शरीफ घरों की लड़कियां ऐसे काम नहीं किया करती। (पृष्ठ- 57)

उपन्यास में यदा-कदा लेखक की वाक्पटुता, स्पष्टवादिता के दर्शन भी होते हैं- 'लोग जरुरत से अधिक कपड़े पहनने लगे थे, अब धीरे-धीरे जरुरत के अनुसार पहनना सीख रहे हैं। (पृष्ठ- 64), अम्बर न हुआ खुदा हो गया (पृष्ठ-65) वे सही जगह पर पहुंचे हुए गलत लोग थे। (पृष्ठ-73) वे एक-दूसरे के शारीरिक अंगों की प्रशंसा उसी प्रकार किया करते थे जैसे अब लड़की के दीखते अंगों की प्रशंसा लड़के किया करते थे। (पृष्ठ-73)

लेखक ने विश्वविद्यालयों में होने वाली नियुक्तियों की धांधलियों पर भी खूब कलम चलायी है, एक नियम सा बना हुआ है, जब अपना उम्मीदवार तैयार हो, तब ही विज्ञप्ति निकलती है। लेखक के पास व्यंग्य की भाषा है तो हास्य भी खूब है- 'कक्षाएं रोज लेना वह किसी से शाबाशी लेने के लिए नहीं करता। वह तो उसकी निजी समस्या थी, इस समस्या से वह मुक्त नहीं हुआ था और मुक्त होना भी नहीं चाहता था। ' (पृष्ठ-79) यदि ये कक्षाएं लेने का पंगा न हो, फिर तो अपनी नौकरी स्वर्ग है स्वर्ग। (पृष्ठ-80) विश्वविद्यालयी शिक्षकों की कलई खोलते हुए वे लिखते हैं- कॉलेज में तीन तरह के प्रोफेसर थे, एक- जो प्रिंसिपल की चौंकी भरते थे और कॉलेज की हर छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी खबर प्रिंसिपल तक पहुँचाया करते थे... । दूसरी तरह के प्रोफेसर वे थे जो खाली रहना चाहते थे, पर प्रिंसिपल के डर से कक्षाएं लिया करते थे... । तीसरी किस्म के वे थे जिनका पढ़ायें बगैर गुजारा नहीं होता था। जो किसी प्रिंसिपल से नहीं डरते थे। डराने वाला जिनके अपने अन्दर था। (पृष्ठ- 80)

बलजिंदर दो अलग-अलग परिवेश के बीच के अंतर को भी दर्शाते चलते हैं, एक तरफ वैवाहिक जीवन है तो दूसरी तरफ प्रेमिका के साथ शेष जीवन गुजरने की उत्कंठा। अम्बर का पत्नी

किरनजीत के साथ तलाक का संवाद इन्हीं दो परिवेश के अंतर को परिलक्षित करता है। ... अब तक मैं तेरे साथ तंगी-तुर्शियाँ काटती आई हूँ। अब दो तन्खवाहों के साथ कुछ अच्छे दिन देखने थे। अब तू मुझे छोड़ने की बातें कर रहा है... (पृष्ठ- 220)... "मुझे तलाक चाहिए। यह मेरा हक़ है कि मैं जिसके साथ रहना चाहूँ, रह सकता हूँ। तू जानती है, मैंने तुझे कभी पसंद नहीं किया, इसके बावजूद तुझे कभी तंग भी नहीं किया। ... (पृष्ठ- 220)" लेखक ने अम्बर का जो चरित्र गढ़ा है, उसमें वह पत्नी को बिना पसंद किये बच्चे भी पैदा कर लेता है और पत्नी को पीएचडी भी करा देता है, उसकी मानसिक बनावट ही ऐसी है कि वह हर फायदे-नुकसान पर सोचता हुआ जिन्दगी जीता है, लेकिन परिणति ये कि उसे प्रेमिका से भी हाथ धोना पड़ता है, "न ख़ुदा ही मिला न विसाल-ए-सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए"। अम्बर पर पत्नी किरनजीत द्वारा आत्महत्या के लिए उठाये गए कदम का भी कोई अधिक असर नहीं होता है। जबकि पत्नी का सोचना है कि "मुहब्बत में डूबे व्यक्ति के दिमाग में कुछ हिस्से सो जाया करते हैं। उसको एक ही चीज बड़ी दिखाई देती है। अपने नफे-नुकसान वह सोच नहीं सकता।" (पृष्ठ- 236) वह अंत तक परिवार को बचाने में प्रयासरत है। जबकि अम्बर की प्रेमिका जोया किरनजीत से कहती है- "जब तुम्हारा पति तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहता तो तुम उसे जबरन कैसे रख सकती हो?" (पृष्ठ- 236)

लेखक इस उपन्यास के माध्यम से मात्र प्रेम, विवाहेत्तर सम्बन्ध तक ही सीमित न होकर समाजवाद, कश्मीर और अन्य भारत के लोगों के विचार, सम्बन्ध, क्षेत्रीयता, शिक्षक राजनीति पर भी अपने विचारों को स्पष्ट करता जाता है।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए लेखक की इस कृति को मैंने अलग-अलग एंगल से देखने-समझने की कोशिश की है, पूरे उपन्यास को पढ़ कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि अम्बर एक चालाक और मौकापरस्त इंसान है, वह जानता हैं कि कब कहाँ-कितने पैर पसारने हैं, कितना किससे खुलना है, कितना खुद को उघाड़ना है, उसकी नायिका भी उसकी तरह शौक़ीन हैं, वे कामातुरता को भी उतना ही प्रदर्शित करती हैं, जितना वे जरूरी समझती हैं, वे प्रेम, वासना को बहुत ही सामान्य समझती है, उन्हें समाज के रीति-रिवाज से भी ज्यादा अंतर नहीं पड़ता, वे आधुनिकता को समर्पित स्त्रियाँ हैं।

प्रोफेसर अम्बरदीप सिंह इस कथा का सबसे संवेदनशील भावुक पुरुष है यह। वह प्रेम के लिए भटकता है और सच्चे जीवन साथी के लिए तरसता रहता है, जबकि उसकी पत्नी एक आर्दश पत्नी के तमाम गुणों के साथ कथा में उपस्थित है। अम्बर को उसका साथ-संग परियों के चलते नहीं सुहाता। वह किरनजीत के प्रेम को महत्व न देकर प्रेमिकाओं में विवाहित सुख तलाशता है जो उसे अंत तक नहीं मिलता। स्थितियां उसके अन्दर एक वैक्यूम क्रियेट करती हैं, जिसे भरने के लिए वह भटकता रहता है।

अम्बर के किरनजीत के साथ कभी लड़ाई-झगड़े नहीं हुए, न ही उनके बीच कोई मन-मुटाव है, फिर भी अम्बर किरनजीत से बौद्धिक या भावनात्मक रूप से जुड़ नहीं पाता, जिसका एक बड़ा कारण उसका ज़ोया से जुड़ाव है।

लेखक ने संयुक्त परिवार से एकल परिवार में बदलते समय की नब्ज़ को भी टटोला है, उन्होंने अपने समय में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को गहराई से दर्शाया था। गाँव का बदलता स्वरूप और ग्रामीण समाज के बदलते मूल्यबोध को भी वे इंगित करते हैं। वे विवाह परम्परा पर बहुत गहराई से विचार करते हैं, आदिम कबीलाई संस्कृति, जहाँ स्त्री-पुरुष के नैसर्गिक संबंधों को, उनके प्राकृतिक मिलन को वे जायज समझते हैं। ग्रामीण और नगर सभ्यता के विकास के साथ विवाह प्रथा में आई जटिलता भी उनकी चिंता का विषय बना है।

लेखक स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में प्रेम को अधिक महत्व देता है। प्रेम बंधन नहीं है, वे प्रेम को सब बंधनों से मुक्त मानते हैं। लेखक स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को आज के समाज से आगे ले जाता है, वह प्रथाओं का दास नहीं बनना चाहता। परिवर्तन के नियम को वह मूल मंत्र मानता है। अम्बर का किरनजीत और ज़ोया के साथ का सम्बन्ध इसी परिवर्तन की परिणति है।

लेखक ने न केवल समकालीन परिस्थितियों को दर्शाया है अपितु ग्रामीण पंजाब, अविभाजित पंजाब तथा जम्मू क्षेत्र के इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। स्वातंत्रयपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल में पंजाब के गाँवों की बदली हुई छवि तथा ग्रामीण समाज पर विभाजन के परिणामों को भी दिखाया है।

कुल मिलाकर लेखक ने शैक्षिक, सामाजिक, दार्शनिक परिदृश्य के वास्तविक दृश्यों का चित्रांकन भी किया है।

बलजिन्दर नसराली द्वारा मूल रूप से पंजाबी में लिखे इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद करते हुए सुभाष नीरव बहुत संजीदा रहे हैं। यहाँ अनुवादक ने पंजाब की माटी और संस्कृति की सुगन्ध को ताज़ा रखा है। मूल उपन्यास, उसकी कथा, कथा की रवानगी से कोई छेड़छाड़ नहीं की है। कथा का मूल स्वर यहाँ नहीं बदलता लेकिन कुछ शब्दों को जानबूझकर कर पंजाबी से बिना अनुदित

किये ज्यों के त्यों रख दिया है, जिनके लिए अच्छे हिन्दी शब्द लिए जा सकते थे।

लेखक और अनुवादक दोनों की भाषा में प्रवाह है। कथा का प्रवाह अपनी ओर खींचता है। ऐसा महसूस होता है मानों अम्बर व उसकी परियां हमारे आसपास ही विचरण कर रहे हैं।

संवाद-शैली लेखक की प्रगतिशीलता को प्रकट करती है, अम्बर कई जगह प्रगतिशील आन्दोलन का वाहक प्रतीत होता है। बलजिंदर के लेखन में एक महत्वपूर्ण बात ये है कि वे अपने लेखन में जो वक्तव्य प्रयोग करते हैं, उससे समाज का सुन्दर चित्रण प्रकट होता हैं। इस उपन्यास में नायक की वेदना को तो वे दर्शाते हैं लेकिन उसे एक निर्णायक पुरुष से परे प्रस्तुत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अम्बर के माध्यम से प्रेमी मन के स्याह पन्नों को उजागर करने की एक सफल/असफल कोशिश कर रहे हों।

उनकी भाषा में पंजाबी, डोगरी, उर्दू, कौरवी, का बराबर प्रयोग हुआ है, यह उनके लेखन की खूबसूरती भी है, सफलता भी। उपन्यास को पढ़ने और उसकी भाषा शैली पर विचार करने के उपरांत यह भी स्पष्ट होता है कि लेखक के पास कहन का सलीका है।

इस समय साहित्य अनुदित पुस्तकों का चलन बढ़ा हैं। जिनका अलग जेनर है, नई पीढ़ी संभवतः अधिक मुखर होकर लिख रही है, वह बनी-बनाई लीक पर न चलकर अपनी राह स्वयं तलाश रही है, बलजिंदर के लेखन के आधार पर उन्हें इस राह तलाशती और राह बनाती पीढ़ी में शामिल करना अधिक न्यायोचित होगा। यह बात उनके उपन्यास "अम्बर परियां" को पढ़कर भी पुष्ट होती है।

उत्तम नगर, नयी दिल्ली -110059, मो. 8377875009

समीक्षा

ख़ैबर दर्रा- संग्रह की कहानियाँ बहुत देर तक साथ बनी रहती हैं

अनीता सक्सेना

पंकज सुबीर की कहानियाँ जाति-धर्म के अंतर को महत्त्व न देकर मानवीय रिश्तों को अहम् स्थान देती हैं। इस संग्रह की अधिकतर कहानियाँ इंसान की उस कमज़ोरी को लेकर लिखी गई हैं जो ईश्वरीय देन होती हैं, अर्थात् इसमें उस बच्चे की या उन माँ-बाप की ग़लती नहीं होती जिन्होंने उसे जन्म दिया है। ये कमज़ोरी क़ुदरतन होती है। इंसान की यह शारीरिक कमज़ोरी जिसको लेकर मन में कई गाँठें पल जाती हैं और ज़िन्दगी भर पीछा नहीं छोड़तीं, ऐसी कई कमज़ोरियों पर संग्रह की कुछ कहानियाँ हैं, जैसे- निर्लिंग, देह धरे का दंड और हरे टीन की छत। बच्चे जो जन्म से या फिर परिस्थितिवश कुछ शारीरिक समस्याओं से पीड़ित हो जाते हैं, उनका मर्म पंकज सुबीर ने कहानी के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है। पहले समाज में ऐसी बातों को छुपाया जाता था, जिसके कारण बच्चे भी और परिवार के लोग भी बहुत तकलीफ़ झेलते थे लेकिन आज इन पर खुलकर बातें की जाने लगी हैं। थर्ड जेंडर को भी समाज में एक उचित स्थान मिलने लगा है। वे शर्मिंदगी को परे त्यागकर पढ़-लिखकर आगे आ रहे हैं और अच्छी नौकरी भी पा रहे हैं। 'देह धरे का दंड' और 'निर्लिंग' इसी प्रकार की समस्या तो बताती हैं लेकिन उसमें इन लोगों के ऊपर किये जा रहे शोषण का वीभत्स चेहरा भी सामने लाती हैं।

पंकज सुबीर की कहानियों में चाहे प्रकृति का वर्णन हो या घर का, होटल का या जंगल का, बहुत विस्तार लिये होता है। 'देह धरे का दंड' में अस्पताल का वर्णन, या 'बीर बहूटियाँ चली गयीं' में जंगलों का, स्कूलों का कॉलेज का, हर जगह लेखक की दृष्टि बहुत पैनी नज़र आई है। यहाँ तक कि स्टेशन पर वेटिंग रूम में बैठे दो लोगों और स्टेशन का दृश्य भी आँखों के सामने एक खाका-सा खींच देता है।

एक और विशेष बात मुझे नज़र आई, वह भी पुस्तक की शीर्षक कहानी 'ख़ैबर दर्रा' में कि यहाँ कहानी में नया प्रयोग है, यहाँ पात्रों के नाम नहीं हैं, उन्हें पहला युवक या दूसरा युवक, युवती या उस आदमी के नाम से ही पुकारा है और कहानी आगे

बढ़ती चली गई है। इस कहानी की शुरुआत तो एक मानसिक कुटिलता लिए गंदे विचार से हुई है, लेकिन अंत मानवीय चेतना के जाग्रत होने के साथ हुआ है, जो पढ़ने में अच्छा लगता है।

'बीर बहूटियाँ चली गयीं' में भी लड़का और लड़की ही केंद्र में हैं, इसको पढ़कर लगता है कि कहानी में इंसान का नाम होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कथानक और दो लोगों के बीच की बातचीत। दो बच्चों की मासूमियत का भी चित्रण है इस कहानी में, उनके मन में उठ रहे सवालों का भी और पहाड़ों की कठिन ज़िन्दगी का भी। पंकज सुबीर फ़िल्मी गीतों का प्रयोग भी अपनी कहानियों में बख़ूबी करते हैं और कविताओं का भी। 'हरे टीन की छत' कहानी में भी चुने हुए साहित्यकारों की कविताएँ लेकर उन्हें कहानी में पिरोया गया है।

पहली कहानी का नाम भले ही 'एक थे मटरू एक थी रज्जो' हो पर यह कहानी जैसा कि लेखक ने कहानी में कहा 'दास्तान-ए-मटरू मियाँ' ही है। एक ऐसी दास्तान जिसमें जो होना चाहिए वो हो तो रहा है पर होकर भी नहीं है।

पंकज सुबीर अपने एक अलग तरह के लेखन के लिए जाने जाते हैं। इस संग्रह में भी पहली कहानी की शुरुआत कुछ अलग होती है लेकिन अंत तक आते-आते पाठक कहानी के अनेक शेड से गुज़रते हुए एक मार्मिक दृश्य पर ठहर जाता है। कहानी का नाम है 'एक थे मटरू मियाँ, एक थी रज्जो'। कभी हँसाती, कभी कुछ सोचने पर मजबूर करती कहानी कहीं-कहीं पर भरपूर व्यंग्य भी करती है।

दो सदियों के मेल को आपने बड़े बढ़िया तरीक़े से जोड़ा है 'जब आये थे, बीसवीं सदी थी जो वसंत और बहार की सदी थी अब इक्कीसवीं है जो पतझड़ लेकर आई है' इस एक वाक्य में आपने मटरू मियाँ से लेकर पार्टी और पार्टी कार्यालय तीनों का एक साथ हाल बता दिया है।

आपने इसे आगे नाम दिया है 'दास्तान-ए-मटरू मियाँ'। क़िस्सा गोई की शैली में मटरू मियाँ की जीवनी से यह कहानी शुरू होती है जो पढ़ते हुए, या कहें कि सुनते हुए चेहरे पर कई बार मुस्कान ले आती है। मसलन उनका नामकरण कैसे हुआ ? उनके चारों भाइयों की शक्लों का वर्णन रोचक है 'अब्बा जितने मोहर्रम-मोहर्रम थे, अम्मी उतनी ही ईदम-ईद थीं। ' यह पढ़कर लगा एक नया मुहावरा बन गया। उसके आगे भी हास्य कई जगह व्यंग्य का साथ लिए मिलता है 'ऐसा लगता था मानो इंसान के नाम पर अब्बा नाम की फोटोकॉपी की ब्लैक एंड व्हाइट मशीन से किसी ने चार कॉपी निकाल दी हों'।

मटरू मियाँ की दादी का प्यार अपने बेटे और पोते के लिए इसी व्यंग्यतम और हास्य का पुट लिए शैली से उमड़ता है 'उनका बेटा यानि मटरू मियाँ के अब्बा उनके लिए चाँद का टुकड़ा थे। शायद वो उस ग्रह से आईं थीं जहाँ चाँद काले होते होंगे'। इसी तरह मटरू मियाँ जो निहायत गोरे-चिट्टे थे उनके लिए 'उनकी अम्मी मटरू मियाँ का शाही स्नान महीने में एक-दो बार ही कर पाती थीं, इसलिए मटरू मियाँ महीने में एक-दो बार ही अंग्रेज़ के बच्चे लगते थे' कहानी का हर वाक्य इसी तरह की उपमाओं और हँसी से भरा हुआ है। मटरू मियाँ का यह गोरापन उन्हें मोहल्ले की तमाम झाँकियों में कभी राम तो कभी कृष्ण बनाया करता था यहाँ तक कि वो सीता और द्रौपदी भी बन जाते थे। उनकी माँग हर कहीं थी। आयोजक उन्हें सुबह ही आकर बता जाते थे कि आज अच्छे से नहा लेना तुम्हें सीता या द्रौपदी बनना है।

मटरू मियाँ के थोड़े बड़े होने के बाद कहानी अपना रूप बदलती है। यहाँ किरदार आता है डी.डी.टी. का यानि दुर्गा दास त्रिपाठी, ढोलक वादक दामोदर और रज्जो का। ये चार किरदार ही इस कहानी के मुख्य पात्र हैं जो आपस में जब मिलते हैं तो एक नई कहानी को जन्म देते हैं। कहानी मटरू मियाँ से हटती तो नहीं लेकिन राजनीति के दंगल में उतर जाती है। पत्रकारिता, राजनीति और कूटनीति तीनों मिलकर शतरंज का खेल खेलते हैं। इस खेल में शतरंज के मोहरों की तरह इंसान को मोहरे बनाकर शतरंज खेली जाती है। खिलाने वाला बेदाग़ बचकर तीनों को उलझा देता है और अंत में मटरू मियाँ को उनका परिवार छोड़ देता है, डी.डी.टी. संसार छोड़ देते हैं बाक़ी दामोदर और रज्जो दोनों अपने-अपने परिवारों में लौट जाते हैं। एक बार फिर से कार्यालय और मटरू मियाँ एक जैसी खंडहर वाली स्थिति में आ जाते हैं। यहाँ पर दास्तान- ए-मटरू मियाँ का दर्दनाक अंत होता है और उस अंत की रिपोर्ट देने वाली पत्रकार पाठक के मन में देर तक हलचल मचाती रहती है यही इस कहानी की सफलता है।

एक बहुत बढ़िया कहानी लगी 'आसमां कैसे-कैसे'। यह पुस्तक की एकदम अलग मिज़ाज की कहानी है जो हमें उस काल में ले जाती है जब लोग अपने वचन के पक्के हुआ करते थे। लोग अमीर होते थे लेकिन जितने पैसों से, उससे ज़्यादा अपने दिलों से। इस कहानी में माँ साब, माया, राठी जी और सेठ राघवदास जी के निर्णय देर तलक याद रह जाने वाले हैं। बहुत बढ़िया कहानी है यह।

इस संग्रह की कहानियाँ बहुत देर तक साथ बनी रहती हैं। संग्रह की कहानियों में लगभग हर विषय पर बात की गयी है। अलग-अलग विषय की कहानियों को समाहित किये हुए यह संग्रह कई सारे सवाल छोड़ जाता है। वे सवाल जिनका उत्तर जानना बहुत आवश्यक है। एक अच्छे संग्रह के लिए लेखक को बधाई।

ख़ैबर दर्रा (कहानी संग्रह) / समीक्षक- अनीता सक्सेना / लेखक- पंकज सुबीर / प्रकाशक- राजपाल एंड सन्ज़, नयी दिल्ली / मूल्य- 325 रुपये / पृष्ठ- 176 / प्रकाशन वर्ष- 2025

अनीता सक्सेना, बी-143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी,
भोपाल, मप्र 462023
मो. 9424402456, ईमेल- anuom2@gmail.com

समीक्षा

नारी कभी न हारी

निर्मला डोसी

उपन्यास को जीवन का महाकाव्य कहा गया है। जिसमें जीवन को उसकी समग्रता से पकड़ने की कोशिश रहती है। वीना चौहान का उपन्यास 'नारी कभी ना हारी' का आवरण पृष्ठ तथा नाम से ही पाठकों को अपने साथ नारी के संघर्षों के सफर पर साथ ले चलने का आह्वान करता है। यह उपन्यास हर तीसरी भारतीय नारी के जुझारू जीवट की प्रमाणिक गाथा है। जिसका केंद्रीय भाव है कि शिक्षा के अतिरिक्त दूसरा कोई अवलंब नहीं बन सकता नारी का, जो उसे सम्मान पूर्वक जीने की राह दिखा सके। ना पिता, ना पति।

उपन्यास की मुख्य पात्र सुशीला ने यह बखूबी जान समझ लिया था और इसलिए शिक्षा की सशक्त पतवार को थाम कर उसनें अपने जीवन सागर के अनगिनत झंझावातों का सामना किया। अनेक बार स्थितियां ऐसी दुरूह बनी,जब उसकी टूटी नाव डूब सकती थी, कमजोर पतवार छूट सकती थी। तब अनगिनत औरतों की मानिंद डूबना ही उसकी नियति होती। पर नहीं हुआ ऐसा। सुशीला में विषम से विषम स्थितियों में भी ना हिम्मत छोड़ी ना हौसला। ना अपने कर्तव्यों से इंच भर भी विमुख हुई। अंततः सफलता के साहिल पर जा लगीं।

यह उपन्यास एक साधारण औरत के जीवन में पैदा हुए संघर्षों की असाधारण कथा है। उपन्यास में पात्र कम है पर उन के माध्यम से भारतीय मध्यम वर्गीय संयुक्त परिवार का ख़ाका बड़ी ख़ूबी से लेखिका ने खींचा है कि किस तरह अभाव इंसान को स्वकेंद्रित और क्रूर बना देते हैं। साथ ही सुशीला का कार्यक्षेत्र अध्ययन और अध्यापन है इसलिए वहां के अंदरूनी दृश्य भी बड़े रोचक है।

वीना चौहान

पुस्तक का शिल्प सुगढ, भाषा सहज,सरल व प्रवाह मय हैं। बीच-बीच में दोनों सखियों के साथ हास्य व्यंग की फुहार भी है जो पाठकों के चेहरे पर मुस्कान ले आती है, साथ ही आश्वस्त भी करती है कि इसी भीतर बची आद्रता और जीवंतता के बल पर ही यह औरत झाड़-झंखाड़ भरे रास्तों से होती हुई राजमार्ग पर पहुंच ही जाएगी।

लेखिका ने विविध घटनाओं के साथ कथा की सुंदर बुनाई की है। उपन्यास की एक बात गौरतलब है कि लेखिका अनायास अपने पाठकों के साथ आत्मीयता की डोर में बांध लेती है। संभवत कारण यह हो, कि उनके लेखन में कोई बनावट नहीं है और जबरदस्ती का ज्ञान भी नहीं ठूंसा गया है। सच का आधार रचना को विश्वसनीय बनाता है। बिना जरा सा भी आक्रामक हुए वह हंसते-हंसते परेशानियों से जूझती है। अनजाने में संदेश भी दे जाती हैं कि गले पड़ी आफतों से निपटने के लिए नकारात्मकता से ज्यादा जरूरी है कि सकारात्मक सोच से ही हल निकाला जाए।

दोनों सखियों की आपसी अंतरंगता नायिका का सेफ्टी वाल्व है जो उसे प्राणवायु देता है। सखी कुसुम के आगे दिल के छालों को खोलती है सुशीला। पति की संवेदनशून्यता बार-बार उसके छालों पर नश्तर लगाती है पर आश्चर्य, उन्हीं के परिवार के प्रति अपने दायित्व बोध से वह कभी विमुख नहीं होती।

वीना चौहान की पुस्तक की नायिका का चरित्र आज की आधुनिक सोच रखने वालों को अविश्वसनीय भी लग सकता है क्योंकि अब परिवार की परिभाषा 'हम दो

हमारे दो' की परिधि में सिमट गई है। उसमें सास ससुर भी नहीं आते, तो ननदों देवरों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सुशीला पति के परिवार को बनाने में आजीवन होम होती रहती है और जीवन का सबसे खूबसूरत समय अभाव से उपजी घुटन में बिता देती है।

सुशीला की रीढ भी हाड मांस की बनी हुई थी। पति की हृदयहीनता और दोनों तरफ के परिवारों की बेरुखी से टूट भी सकती थी यदि उसमें शिक्षा और विवेक का इस्पात नहीं भरा होता तो। एक जगह पर कितनी सच कह जाती है लेखिका कि नारी की विडंबना भी अजीब है उसे अपने जीवन में अनगिनत परीक्षाएं देनी पड़ती है। शैक्षिक परीक्षाओं के प्रमाण पत्र तो उसे मिल भी जाते हैं लेकिन जीवन की परीक्षाओं का प्रमाण पत्र कोई नहीं देता।

विवाह पूर्व पति के पत्र को देखते ही वह बुझ जाती है और हिम्मत करके पिता से प्रतिवाद भी करती है। 'भले मेरी शादी किसी चपरासी से कर देना पर मुझे b.ed तो कर लेने दो'। पिता नहीं माने। माँ भी लड़के की खूबसूरती पर लट्टू हो गई। बड़े से कुनबे के मामूली नौकरी वाले पिता विहीन पुत्र का हाथ आया रिश्ता उन्होंने नहीं गँवाया।

प्रतिवाद के प्रत्युत्तर में सुशीला की बड़ी लानत मलामत हुई। यह कहकर कि माँ-बाप का फर्ज़ हम पूरा कर सकते हैं आगे तुम्हारा भाग। बेटी आपभागी होती है और धकेल दिया उसे अनजाने अनदेखे कुएँ में। जहां उम्र भर पति के कुनबे को पालती रही वह। यह उसका ही जिगरा था कि उसने b.ed भी किया और डबल M.A. भी। अध्यापन के क्षेत्र के नौकरी की, जबकि उसके परिवार को तो गुदड़ी बनाने में एक्सपर्ट बहू की चाहत थी।

कैसी भी बिहड़ यात्रा रही उस नारी की, पर हारी वो भी नहीं और अंततः जीवन के उत्तरार्ध में ठहराव आया। मान सम्मान भी साथ लाया।

लेखिका ने सुशीला की कहानी कहते -कहते बड़े चुटीले व्यंग और राजस्थानी भाषा के समृद्ध मुहावरों का सटीक प्रयोग किया है जो उनके कथन को हृदय ग्राही बनाता है।

सुशीला के संघर्षों के माध्यम से साक्षरता अभियान की भी पोल खोली है। लेखिका ने किस तरह इसका धुआँधार प्रचार किया जाता है। प्रौढ़ों की पढ़ती हुई तस्वीरें, प्रदर्शनी, नाटक, युवाओं के जोश की प्रशंसा और अज्ञान दूर करने के बीड़ा उठाने का भ्रम जाल फैलाकर लाखों रुपए पानी में बहाने के उपरांत कितने निरक्षर साक्षर हुए कोई नहीं बता सकता। उद्देश्यहीन योजनाओं की पोल खोली है।

दूसरी बार कन्या शिशु के जन्म पर 'फेर एक भाटो आयग्यो' भाटो यथार्थ पत्थर। घर के अनगिनत रोजमर्रा के कार्यों के साथ-साथ अध्ययन करके व अध्यापन से अर्जित पैसे से गृहस्थी चलाने वाली महिला को भी यह उपालंभ सुनने को मिले तो उसे दुनिया से वितृष्णा हो ही जाएगी ना। पर नारी के गठन में सहिष्णुता का ऐसा गारा मिला होता है कि वह रोती है, कलपती है पर फिर उठ खड़ी होती है अपनी संतान के लिए, क्योंकि अभी उसे दूसरी पारी भी तो खेलनी है। उपन्यास के कई प्रकरण बेहद मार्मिक है किंतु विश्वसनीय भी है। भले वे कम उम्र बालिकाओं के साथ रोज होने वाले बहशियाने कृत्य हों या सरकारी अस्पतालों की दुर्दशा, अध्यापन के क्षेत्र में फैले स्कूलों के अंदरूनी हालात पर भी कलम चली है लेखिका की। सुशीला के पीएचडी रुकने का कारण भी विश्वविद्यालय की घिनौनी राजनीति से मानस का क्षुब्ध हो जाना था। उम्र भर बेटों को बेटियों से सवाया मानने के पारंपरिक भ्रम को टूटने पर भी वह अपनी मां से क्या कहती सिर्फ उसके साथ दुख में विगलित होने के, जिसका बुढ़ापे में अपना एक बेटा छोटी उम्र में काल में समा गया और दूसरे के षडयंत्रों ने बेसहारा करके उन्हें भीतर से तोड़ कर रख दिया।

उपन्यास के दूसरे भाग में सुशीला अपने गांव चली गई और सखी कुसुम के पास छोड़ गई अनगिनत प्रश्नों के नागफनी। यदि सुशीला ने अपने बूते पर शिक्षा ना कमाई होती तो उसे दुखों से निजात दिलाने वाला कोई नहीं था। उपन्यास के उत्तरार्ध में लेखिका ने सुशीला के जीवन का दूसरा उजला पक्ष दिखाया है। जब सुशीला अपने लिए जीना शुरु करती है। बेटा डॉक्टर बन गया है।

एक नाटकीय स्थिति में कुसुम और सुशीला फिर मिलती हैं हॉस्पिटल में, जहां कुसुम की बेटी डॉक्टर है और सुशीला का बेटा भी। ' बीती ताहिं बिसार दे आगे की सुध ले' का सिद्धांत अपनाकर सुशीला ने अब खुश रहना सीख लिया है। कहती है पति के भुनभुनाने पर '62 साल में भी अपने अनुकूल नहीं जी सके तो धिक्कार है इस जीवन को उम्र के सबसे सुंदर दिन तो भटियारखाने में ही निकाल दिये'।

लेखिका की दृष्टि जेनरेशन गैप, घरेलू हिंसा पर भी गई है। आधुनिक जीवन पद्धति व स्वतंत्रता का भरपूर स्वाद चखने वाली नई पीढ़ी की पक्षधर नहीं है वो।

कहती हैं कि हमारे समय में संस्कारों की जड़ें बहुत गहरे पैठ जमाए हुए थी। स्त्री परिवार की धुरी होती थी। किसी मजबूत कील से बंधी, कि उसे उखाड़ना संभव नहीं था जब तक कि सर पर से पानी ऊपर से ना निकल जाए, वह हार नहीं मानती थी।

जीवन में स्थायित्व आते ही सुशीला में कबसे छोड़ी अपनी डायरी व कलम की सुध ली। शिक्षा व साहित्य के सफर पर निकली वीना चौहान की नायिका को जीवन के उत्तरार्ध में अपनी दबी इच्छाओं को पूरा करने का भरपूर अवसर मिला। उपन्यास में नायिका की मार्फत लेखिका ने अपने पाठकों को चारों धाम की यात्रा करवा कर ही इति नहीं कर दी उन्हें समूचा यूरोप में घुमा दिया। उपन्यास के साथ-साथ यात्रा वृतांत का रोचक वर्णन भी पढ़ने का भरपूर आनन्द पाठकों ने उठाया। इस तरह 'नारी कभी नहीं हारी' उपन्यास की नायिका शिक्षा तथा लेखन के क्षेत्र में राष्ट्रीय व राज्य स्तर से पुरस्कृत होकर अपनी जीत दर्ज करवा कर रही।

–निर्मला डोसी, मुंबई, मो. 9322496620

समीक्षा

बच्चों को सफल कैसे बनाएं ?

समीक्षक श्री मनोज श्रीवास्तव
आईएएस, मो. 9425150651
संपादक - 'अक्षरा' भोपाल
भारतीय पौराणिकी के प्रखर विश्लेषक

पुस्तक : बच्चों को सफल कैसे बनाएं ?
लेखक : कुमुद वर्मा
प्रकाशक: ज्ञान गंगा, दिल्ली
पृष्ठ: 144
मूल्य 300

कुमुद वर्मा

जब मैं इस पुस्तक के शीर्षक पढ़ रहा था कि बच्चों को सफल कैसे बनाएं तो मुझे लगा कि जैसे इन दिनों मार्केट में 'सक्सेस बुक्स' की बहुत भरमार है तो ये कोई ट्रेंड को एनकैश करने वाली बात है क्या? जैसे- जैक एंड फ़ील्ड की पुस्तक आई है - द सक्सेस फुल प्रिंसिपल या नेपोलियन हील की पुस्तक है- द सक्सेस विद पॉजिटिव मेंटल एटीट्यूड, ब्रेड वैल की आउटलायर है - द स्टोरी ऑफ सक्सेस तो मुझे लगा कि ये एक क्रम चल रहा है। फैशन बन गया और फिर मुझे ये भी लगा कि हमारे इस सफलता की हम बात तो करते हैं यह हमारे आधुनिक समाज में सफलता वास्तव में क्या है? सफलता की परिभाषा क्या है? किसे हम सफलता कहेंगे ? यह सोशल कंडीशनिंग से तय होता है लेकिन जब मैंने इस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया तो यह देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया कि पुस्तक सफलता के बारे में न होकर, पेरेंटिंग के बारे में है।

बच्चे का सफल होना उसके माता पिता का सफल होना है। इस सिद्धांत स्थापित करने के उस दृश्य में मुझे दिलचस्पी हुई। मैंने पूरा पढ़ा और जब मैं पढ़ रहा था तो मुझे लगा कि अच्छी खासी मनोवैज्ञानिक पुस्तक है जो न केवल बच्चों का मन समझती है बल्कि अभिभावकों का भी और अध्यापकों का भी मन समझती है। उसे बहुत सरल तरीके से बहुत रोचक उदाहरणों, प्रसंगों के माध्यम से समझाती है।

देखा जाए तो पुस्तक छोटी है लेकिन और 34 अध्याय हैं जो दृष्टांतों का सहारा लेते हैं वो बड़ा दिलचस्प है। कई बार तो दृष्टांत ऐसे हैं जैसे ओशो के संबोधनों में मुल्ला नसरुद्दीन के संवाद हुआ करते थे। कुछ बातें है जो बीच - बीच में दृष्टांतों के माध्यम से समझाई गई हैं। इसका एक अध्याय है- समय की मांग। उसमें एक प्रोफेसर किसी को बताते हैं कि वो प्रोफेसर हैं तो उनसे कहा जाता है कि वो तो ठीक है परन्तु आपका धंधा क्या है? एक आत्ममंथन नामक अध्याय है तो उसमें राजेश की कहानी बताई है या जो है चित्रा की कहानी कुमुद वर्मा जी ने दी है; ये सारे उदाहरण और दृष्टांत पुस्तक की सरसता के लिए नहीं आए बल्कि ये अपने आप में कोई प्रश्न या कुछ संदेश लिए हुए हैं। ये बोध गम्य, बौद्धिक स्तर पर लिखा हुआ और मूलतः पेरेंटिंग पर है और जो एक बात कही जाती है– बींग पैरेंट जस्ट रिमेम्बर द– इन योर अदर दैन यू।

हमें यह याद रखना चाहिए कि अपने बच्चे की आँख में उनके लिए सबसे ज़्यादा हम ही कर सकते हैं कोई और नहीं कर सकता। इस पुस्तक में कई अध्याय हैं जो यह बतलाते हैं कि अभिभावकत्त्व का महत्व क्या है? बल्कि इसकी शुरुआत में ही अभिभावकों को उसके महत्व को मैथमेटिकली, स्टैटिस्टकली प्रूव किया गया है। स्कूल में बच्चे द्वारा बिताए गए समय का पूरा गुणा भाग किया गया है और सिद्ध किया गया है कि जितना समय बच्चा स्कूल में बिताता है उससे ज्यादा अपने घर में बिताता है और उसको जब मैं पढ़ रहा था तो मुझे लगा कि ये तो बात सही है इसलिए शायद हमारे शास्त्रों में माता को प्रथम गुरु कहा गया है। मुझे ये भी लगा कि शायद इसलिए ही गणेशजी ने दुनिया की परिक्रमा नहीं की। अपने माता-पिता की परिक्रमा कर ली और उसको जो है पर्याप्त समझा। कार्तिकेय दुनिया की परिक्रमा करने चले गए लेकिन प्रथम पूज्य गणेश हुए तो वो इसलिए हुए होंगे कि माता-पिता का यह महत्व जो है, पेरेंटिंग का यह जो महत्व है उसे यहीं स्थापित किया गया। इसमें बताया कि 3 गुना समय है बच्चे के पास घर में, स्कूल की तुलना में। मैं पढ़ रहा था कि बच्चे के पास तो समय है लेकिन क्या आधुनिक माता पिता के पास इतना समय है? वही ट्रेजडी है कि बच्चे की समय गणना तो जो है वह गणितीय दृष्टि से सही-सही हम लोग कर लें लेकिन उसके अभिभावकों की बच्चे के लिए जो प्रासंगिक समय गणना है वो भी उतनी ही जरूरी है। नहीं तो मॉडर्न पेरेंट्स जो है बच्चे को अपनी प्रेजेंस नहीं दे पाता। अपनी अनुपस्थिति की क्षतिपूर्ति के बदले में प्रेजेंस के बदले में प्रेसेंट देकर करते हैं। गिफ्ट देते हैं। अभिभावक के रूप में प्यार को कमोडिटी बिजनेस में स्थापित कर देते हैं प्यार के बदले में और सोचते हैं कि शायद हमने नुकसान की भरपाई कर ली। जबकि वास्तव में हुआ यह है कि हमने नुकसान किया है फिर बाद में हम ही शिकायत करेंगे। अभी ये जो वस्तुएं दे देकर जो हम लोग किसी तरह से समय न दे पाने का अहसास कम करा है उसकी जो पूर्ति करते हैं हम लोग बाद में हम ही शिकायत करेंगे कि बच्चा मटेरियलिस्टिक हो गये। वस्तुवादी हो गये। हमीं दे रहे थे तो इसलिए मुझे ये इम्पोर्टेन्ट लगा कि उन्होंने इतना अच्छे तरीके से ये सब बातें इसमें बताई हैं।

इस पुस्तक में चिंता की एक बड़ी स्पेस जो है वो कैशोर्य। कैशोर्य संधि काल है - बचपन और यौवन के बीच। प्रायः मैंने देखा कि बचपन पर तो बहुत सारी कविताएँ लिखीं हैं। यौवन पर भी बहुत सारी कविताएं लिखी गईं किन्तु किशोर वय के मुद्दों पर हमारा ध्यान नहीं जाता तो मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि इस किताब का लगभग आधा भाग तो किशोरावस्था की समस्याओं पर है। कवितायें उतनी नहीं लिखी गईं किशोरावस्था पर।

किसी भी पब्लिक प्लेस में हम जाएँ तो किशोर सबसे ज्यादा हमें दिखेंगे। किसी भी मॉल में चले जाएं। सिनेमा में चले जाएं तो ये टीनेजर सबसे ज्यादा दिखाई देंगे। यही जो किशोरावस्था है यही वो अवस्था है जिसमें बीच में स्वीट सिक्स्टीन आता है जिसको रोमांटिक साहित्य में थोड़ी सी जगह मिली भी हुई है। यह मूलतः संक्रमण का दौर है। किशोरावस्था एक तरह की दहलीज है और इस दौर की चुनौती जितनी हार्मोन्स की है उससे ज्यादा हारमनी की है। यह हम लोग यह नहीं समझते कि यह उम्र भारी उथल-पुथल का दौर होती है और बच्चा सोचता है कि किस तरह से एडजस्ट करें? उसके शरीर में, उसकी चेतना में, उसके मनोविज्ञान में बहुत बड़े बदलाव हो रहे हैं और उन सब चीजों को इतनी अच्छी तरह से लिखा गया है। इसलिए मुझे लगा कि यह बहुत महत्वपूर्ण है।

इस पुस्तक के पृष्ठ 52, 53 पर मैं पढ़ रहा था जिसमें वो बता रही हैं कि कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। कुछ ऐसी कि बच्चों के कामों में त्रुटियां तो होंगी इसलिए उनकी आलोचना न करें। उन्हें दंड न दें। प्राकृतिक रूप से भी उन्हें सीखने दें। उन्हें प्रोत्साहित करें। धैर्य रखें। बच्चे की शारीरिक क्षमता का ध्यान रखें। ऐसी उन्होंने बातें कहीं। उसको पढ़ रहा था तो मुझे लगा की विश्व की अधिकतर समस्याएं इसी कारण से हैं कि हम उस फर्क को नहीं समझते। प्रकृति किस तरह से काम करती है और हमारी सोच किस तरह से काम करती है।

बच्चे के स्वभाव और हमारी सोच के बीच का अंतराल और बच्चों को बेहतर बनाने की जो हम बात कहते हैं तो सबसे पहले एक अभिभावक के रूप में हमें स्वयं को बेहतर बनाना, वो बात इनके अध्यायों में अलग-अलग तरीके से बताई है। माँएँ चाहती तो हैं कि बच्चे शिवाजी बनें (मैं अपनी तरफ से कह रहा हूँ) खुद जीजाबाई बनने के लिए तैयार नहीं। बच्चों के कामों में त्रुटियाँ तो होंगी लेकिन उनकी आलोचना न करें– आप अपनी इस पुस्तक में कह रही हैं तो मुझे याद आ रहा था कि अधिकतर मैंने देखा है कि बच्चे के हाथ से अधिक कोई चीज़ गिर टूट जाए तो माँ शुरू हो जाती है। क्यों तोड़ा? क्यों करते हो ऐसा? क्यों नहीं ढंग से बैठते? क्यों नहीं सुनते तुम मेरी?

अब बच्चे के हाथ से चीज़ गिर के टूटी है तो आलरेडी ही एक तरह की गिल्ट फीलिंग में वो वैसे ही डरा हुआ है और उसमें आप 'क्यों' की बौछार कर देते हैं? क्या वो जानबूझकर तोडना चाहता था ?

क्यों वो इन क्यों का उत्तर दे?

और वो सारे पटके गए प्रश्न उसके संभ्रम में और भी वृद्धि करते हैं। क्योंकि माँ पूछ रही है और पूछे जा रही है। तो इसमें अकारण हुई उस चीज़ का कारण अविष्कृत करना है। उस कारण का आविष्कार करना है उसने।

अन्यथा उसे माँ के दंड का इंतजार है उस बच्चे के मन में। इस क्षण पर वो झूठ प्रवेश करता है।

वो बोल देता है कि किसी बच्चे ने धक्का दे दिया। अब उसकी ब्लेम शिफ्टिंग की आदत शुरू होती है। इल्ज़ाम किसी और के सर आए तो अच्छा।

जो बीज पड़ा है वो धीरे -धीरे समय की खाद के साथ पनपता है। अपनी गलतियों के लिए दूसरों को दोष देना उसकी आदत बन जाती है। इस तरह का ब्लेमर पैटर्न उसमें डेवलप हो जाता। कुमुद वर्मा इस पुस्तक में बार बार जो कह रही हैं कि बच्चे की त्रुटियों पर फोकस मत रखिए। और यह मानिए कि बच्चों को भी गलती करने का अधिकार है। मत कहिए कि कब?

मानो कि हमारा बच्चा थोड़ा नॉटी है और घर की कोई चीज़ उससे सेफ नहीं। बच्चे की सेल्फ इमेज के साथ मत के खेलिए। बच्चे के साथ खेलिए।

कुमुद वर्मा जी ने अपनी पुस्तक में अच्छे उदाहरणों के साथ, बहुत सहज तर्कों के साथ उस बात को स्थापित किया है।

–अहमदाबाद, मो. 9898633354

नूरे अदब की नूरे अदीब : कुमुद वर्मा
आपकी साहित्यिक क्यारी सदा तमगे नुमाँ
फूलों से सजती चली जाए; शुभकामनाएँ– **संपादक**

अन्तर्राष्ट्रीय अनुज्ञा सत्य
नारी शक्ति सम्मान - 2025
Dr. Satya Hope Talks
Dr. Satya Hope Talk
+91 94158 12128
8 March
International
Women's day
आ. कुमुद वर्मा जी
स्थान : गुजरात
कार्यक्षेत्र : विशिष्ट साहित्यकार
TSF 544/54
आदरणीय आपके व्यक्तित्व को देखते हुए और आपके द्वारा किए गए कार्यों को देखकर हमारी संस्था आपको "अन्तर्राष्ट्रीय अनुज्ञा सत्य नारी शक्ति सम्मान -2025" देकर स्वयं को गौरवांवित महसूस कर रही है, आपका जुड़ाव संस्था के उत्कृष्ट कार्यों के प्रति उदार बना रहे, आपको हृदय से आभार ।
प्रस्तावक- आ. तस्लीम फातिमा
डॉ. सत्य प्रकाश
लाइफ कोच/वैज्ञानिक
संस्थापक अध्यक्ष
डॉ. सत्या होप टॉक
डॉ. रघुनाथ मिश्र सहज
अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष
डॉ. सत्या होप टॉक
आ. नीरज कान्त सोती
अन्तर्राष्ट्रीय उपाध्यक्ष
डॉ. सत्या होप टॉक
डॉ. ओमप्रकाश मिश्र व्यथित
राष्ट्रीय अध्यक्ष
डॉ. सत्या होप टॉक
आ. रचना शास्त्री
राष्ट्रीय उपाध्यक्ष
डॉ. सत्या होप टॉक
संपर्क सूत्र: drsatyahopetalks@gmail.com

अंतरराष्ट्रीय
हंगामा लोक
साहित्यिक एवं सामाजिक संस्था

सम्मान पत्र

आ० कुमुद वर्मा जी

अंतरराष्ट्रीय हंगामा लोक साहित्यिक, सामाजिक संस्था द्वारा अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर आपको आपके द्वारा की जा रही साहित्यिक/सामाजिक सेवाओं के लिए

नारी रत्न सम्मान **2025**

प्रदान करते हुए हमें सुखद अनुभूति का अनुभव हो रहा है।अंतरराष्ट्रीय हंगामा लोक साहित्यिक, सामाजिक संस्था निरतंर आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती है।

जे. के. कौशिक	राखी	उपासना
संरक्षक	संस्थापिका	संस्थापिका
डॉ जितेन्द्र कौशिक	राखी कौशिक	उपासना कौशिक

दिनांक-**8/3/2025**

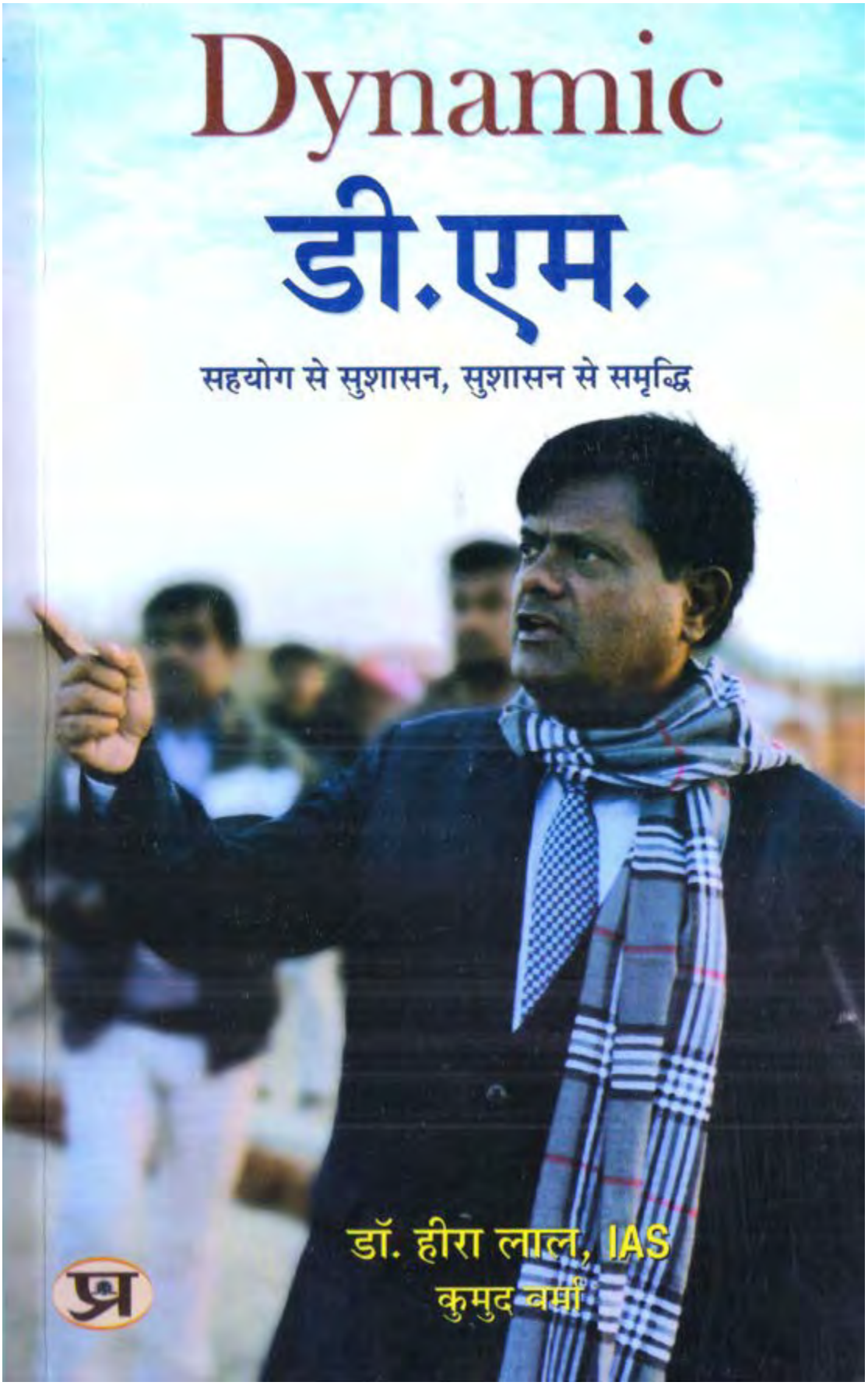
Dynamic
डी.एम.
सहयोग से सुशासन, सुशाासन से समृद्धि
डॉ. हीरा लाल, IAS
कुमुद वर्मा
प्र

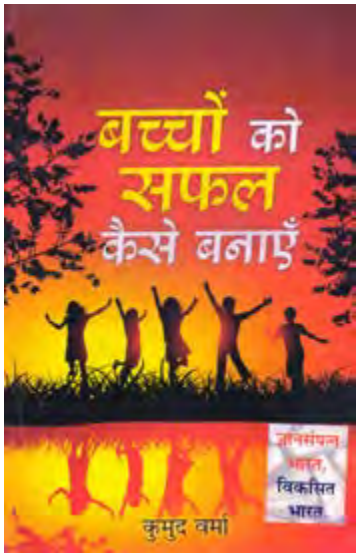
बच्चों को
सफल
कैसे बनाएँ
कुमुद वर्मा

કુમુદ વર્મા

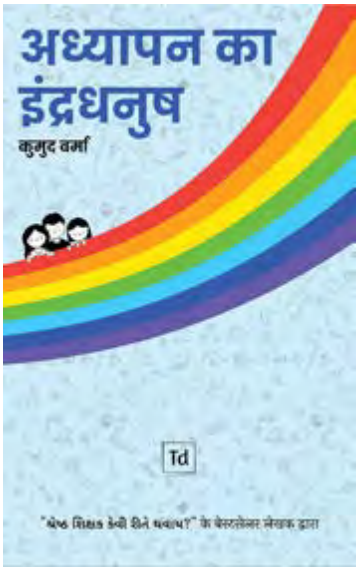
अध्यापन का
इंद्रधनुष
कुमुद वर्मा
Td

कुशल
अध्यापक
कैसे बनें
कुमुद वर्मा
आर्य पब्लिशिंग हाउस

તમારાં બાળકોને
સફળ કેવી
રીતે બનાવશો?
કુમુદ વર્મા

अंडमान
एक अद्भुत आकर्षण
कुमुद वर्मा

Td
हम तो
बच्चे हैं
कुमुद वर्मा
बाल -कविताएँ

भारत - गौरव
Td
Kumud Verma

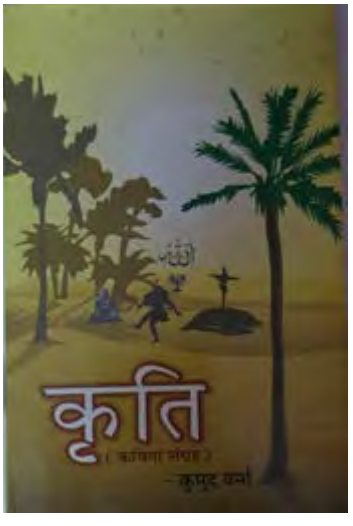
कृति
-कुमुद वर्मा

साहित्यिक संगोष्ठी

किताबें बोलती हैं : सौ लेखक, सौ रचना

दिनांक 12.4.2025 को 'कस्तूरी' द्वारा आयोजित कार्यक्रम किताबें बोलती हैं: सौ लेखक, सौ रचना कमला दत्त की समग्र कहानियों पर परिचर्चा हुई। परिचर्चा का आयोजन साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली में किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रत्यक्षा जी ने की। इस कार्यक्रम में वक्ता ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता, वंदना वाजपेई रहे। कार्यक्रम में सूत्रधार की भूमिका साहित्य एवं कला अध्येता विशाल पाण्डेय ने निभाई। वक्ताओं को सम्मानित करने के उपरांत ऋतू वार्ष्णेय गुप्ता ने अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहानियों को जीवंत, यथार्थपूर्ण, सामाजिक संघर्ष की अभिव्यक्ति कहा। कहानी में वर्णित समान भाव, समानता, नारी मुक्ति, स्त्री बोध, विदेशी संस्कृति और कथात्मक संवेदना की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कहानी में चेतना को रेखांकित करते हुए कहा "इनकी कहानियों में स्त्री बोध कमाल का है। वे अंत में अन्याय के खिलाफ संघर्ष शुरू कर देती है।" वंदना वाजपेई ने कहानी संग्रह की कहानियों पर विस्तृत चर्चा की उन्होंने कहानियों में अभिव्यक्त विचार पक्ष को महत्वपूर्ण माना और कहा, "उनकी कहानियों में मूल धुन सुनाई पड़ती है।"

लेखिका के कहानियों में तकनीकी, प्रवासी भारतीयों की समस्याएं, स्मृतियों को बखूबी दर्शाया गया है। उन्होंने 'तीन अधजली मोमबत्तियां', 'बायू' एवं 'छंटनी' कहानियों का विश्लेषण करते हुए कहा, "कहानियों में पात्रों के नाम के जगह मैं और तुम का संबोधन है जो कहानी को नयापन देता है।" तीन अधजली मोमबत्तियाँ कहानी में अमेरिकन नेटिव और इंडियन के साथ हुए शोषण को दर्शाया गया है । "कहानी में घटित घटना यथार्थ में नहीं अतीत में हुई है जिसे पात्र याद कर रहे हैं।" छंटनी कहानी में "पात्रों को जीवन में परिस्थितियों के अनुसार छंटनी करते दिखाया है।"

कहानी की लेखिका कमला दत्त ने विद्वानों का आभार व्यक्त करते हुए अपने साहित्यिक जीवन अनुभव को साझा किया । भेदभाव की समस्या को रेखांकित करते हुए कहा, "इंडिया की तरह अमेरिका में भी डिस्क्रिमिनेशन की समस्या है, मैंने छोटे स्कूल में पढ़ाया और कई कॉलेज और यूनिवर्सिटी में गई ।" उनकी कहानियां भी शोषक और शोषित के मध्य संघर्ष को दर्शाती है। अपनी पहली कहानी 'मछली सलीब पर टंगी हुई' के बारे में कहा," यह कहानी भारती जी को अच्छी लगी और ये पब्लिश हो गई।" अध्यक्षीय भाषण प्रत्यक्षा जी ने दिया । उन्होंने कहानियों पर अपने विचार प्रस्तुत किये, "कहानियों का कैनवास बहुत बड़ा है। कहानी की दुनिया करीब की दुनिया है।" उन्होंने कहानी के शीर्षक, शैली, प्रवासी जीवन एवं साइंटिफिक टेंपरामेंट को सराहा। कहानी के किरदारों को भीतरी मन और बाहरी दुनिया के मध्य पुल बनाने वाला कहा। किरदारों के कलेवर से प्रभावित होकर कहा, "मैं कहानी में वर्णित किरदारों के साथ बैठकर बात करना चाहूँगी।" अंत में औपचारिक धन्यवाद ज्ञापन की प्रक्रिया दिव्या जोशी द्वारा पूर्ण की गई। कार्यक्रम की वीडियोग्राफी एवं फोटोग्राफी इंजमाम द्वारा की गई। **–रिपोर्ट: डॉ. निक्की राय**

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्र कुमार बहल द्वारा डेकोरपैक इंडिया प्रा. लि., 291डी, सेक्टर 6, आई.एम.टी., मानेसर, गुड़गाँव (हरियाणा) से मुद्रित, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070 से प्रकाशित किया । -संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल

साहित्य अकादेमी
Sahitya Akademi
Rabindra Bhavan
35 Ferozeshah Road, New Delhi-110001

विशाल पाण्डेय
कमला दत्त

विशाल पाण्डेय
कमला दत्त